RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2023-25

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 62 अंक : 06 प्रकाशन तिथि : 25 मई कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 जून 2025

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

"तोमर क्षत्रिय कुल के गर्व जिनकी कलम में क्रांति थी, और हृदय में राष्ट्र के लिए समर्पण।
राम प्रसाद बिस्मिल— एक योद्धा, एक कवि, एक बलिदानी—
जिन्होंने क्षत्रिय धर्म की मर्यादा निभाते हुए आजादी की वेदी पर अपना जीवन अर्पित किया।"

"क्षत्रधर्म रक्षाय वीर्यं, मातृभूमेः हेतुं जीवनं।
एवं जीवितो बिस्मिलः, अमरत्वं प्राप्नोति धर्मेण।"

2012 से अब तक 500+सलेक्शन रजि. नं.: 95/नागौर/2014-15

आन डिफेन्स एकेडमी

दल्ला बालाजी मन्दिर के पास, कुचामन सिटी, जिला डीडवाना-कुचामन

एयरफोर्स | नेवी | आर्मी | राजस्थान पुलिस | एस.एस.सी. | दिल्ली पुलिस

हेतु फिजिकल, लिखित परीक्षा व साक्षात्कार के लिए विश्वनीय प्रशिक्षण केन्द्र

निदेशक
इन्द्र सिंह राठौड़
रिटायर्ड सीनियर मैनेजर जयपुर थार ग्रामीण बैंक
M- 9784962903

शारीरिक प्रशिक्षक
मनमोहन सिंह
Ex. BSF
M- 6350043081
9602436339

YouTube AAN DEFENCE ACADEMY
AAN DEFENCE ACADEMY
AAN DEFENCE ACADEMY

संघ बन्धु सांवत सिंह जी ऊँचाईडा के पुत्र

विनय प्रताप सिंह का 68 वी राष्ट्रीय विधालयी फुटबाल प्रतियोगिता में राजस्थान टीम में चयन होकर राष्ट्रीय फुटबाल प्रतियोगिता में भाग लेने पर संघ परिवार (जोधपुर संभाग)की तरफ से हार्दिक शुभकामनाएं

शुभेच्छु बंधुगण

रूपसिंह परेऊ , प्रेम सिंह रणधा, भवानी सिंह मुंगेरिया, उत्तम सिंह नाहर सिंह नगर
महेंद्र सिंह गुजरावास, करणीपाल गाँवडी, दिलीप सिंह गड़ा, तनसिंह बिजाबा
भैरू सिंह बेलवा, मूलसिंह बेतिना, नरपत सिंह रामदेरिया, सुरेंद्र सिंह रुद, नरपत सिंह बस्तवा
महेश पाल सिंह गंगासरा, पाबु सिंह लवारन, लुणकरणसिह तेना, भरत पाल सिंह दासपा
भगवान सिंह रावलगढ़, हरी सिंह ढेलाणा, लक्ष्मण सिंह गुडानाल, पदम सिंह ओसियां, जसवंत सिंह सेतरावा
गुलाब सिंह बेतीना, दीप सिंह तालनपुर, गोविन्द सिंह पाचला, शिव सिंह बड़ला, मदन सिंह आसकन्द्रा
चैन सिंह साथिन, युधिष्ठिर सिंह बेठवास, महावीर सिंह बापिणी, समुद्र सिंह आचीणा

संघशक्ति

4 जून, 2025

वर्ष : 62 अंक : 06

-: सम्पादक :-

राजेन्द्र सिंह राठौड़

शुल्क - एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह जी रोलसाहबसर	05
❍ पूज्य श्री तनसिंह जी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैन सिंह बैठवास	06
❍ इतिहास की चोटों का.....	✍ अजीतसिंह धोलेरा	09
❍ गौतम बुद्ध: चार आर्य सत्य	✍ राजेन्द्रसिंह बोबासर	12
❍ द्रौपदी-सत्यभामा संवाद	✍ श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र'	16
❍ कुँ. राजसिंह मेड़तिया (तीर्थगुरु पुष्करराज...)	✍ वीरेन्द्रसिंह तलावदा	19
❍ सत्तर खान-बहत्तर उमराव	✍ युधिष्ठिर	23
❍ अजयमेरू संस्थापक चक्रवती महाराजा.....	✍ दयालसिंह सिलारी	24
❍ धर्म के चार स्तम्भ और क्ष.यु.संघ का आदर्श...	✍ जितेन्द्रसिंह देवली	29
❍ हमारी विवाह संस्था-वर्तमान चुनौतियां.....	✍ राजेन्द्रसिंह रानीगाँव	30
❍ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

- **शक्तिधाम में संघप्रमुख श्री के सान्निध्य में दो दिवसीय बैठक सम्पन्न–** दिनांक 26-27 अप्रेल, 2025 को गुजरात के शक्तिधाम (सुरेन्द्रनगर) में श्री क्षत्रिय युवक संघ के गुजरात क्षेत्र के स्वयंसेवकों की दो दिवसीय बैठक सम्पन्न हुई जिसमें संघप्रमुख श्री के सान्निध्य में 100 स्वयंसेवकों ने भाग लिया। बैठक में आगामी उच्च प्रशिक्षण शिविर में भाग लेने वाले शिविरार्थियों की संख्या पर चर्चा हुई। संघप्रमुख श्री ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि शक्तिधाम, सुरेन्द्र नगर हमारे लिए 'कुम्भ' के समान महत्व रखता है अत: गुजरात के सभी स्वयंसेवकों को परिवार सहित यहाँ आना चाहिये, साथ ही अष्ट सूत्री कार्यक्रम की महत्ता बताते हुए कहा कि प्रत्येक स्वयंसेवक इसका पालन करे। गुजरात क्षेत्र में संघ कार्य के विस्तार पर भी चर्चा की गई।
- **मातृशक्ति संस्कार निर्माण शिविर सम्पन्न–** दिनांक 1 से 4 मई, 2024 चार दिवसीय संस्कार निर्माण शिविर श्री राजपूत सेवा समिति ट्रस्ट, नीमच (म.प्र.) में सम्पन्न हुआ जिसमें 82 बालिकाओं ने भाग लिया। शिविर की दैनिक गतिविधियों के माध्यम से क्षत्रियोचित गुणों को धारण करने का अभ्यास किया।
- **श्री क्षत्रिय युवक संघ की संभागीय बैठक व कार्यशालाएँ–** संभागीय बैठकों के अन्तर्गत नागौर संभाग की बैठक 19-20 अप्रेल, 2025 कुचामन में, बीकानेर संभाग की बैठक नारायण निकेतन में 27 अप्रेल को तथा रानीवाड़ा प्रान्त की बैठक 27 अप्रेल को एवं 3 मई को बाड़मेर संभाग की बैठक आलोक आश्रम, बाड़मेर में आयोजित हुई। सभी संभागीय बैठकों में चर्चा के मुख्य बिन्दू थे-आगामी उच्च प्रशिक्षण शिविर में शिविरार्थियों की सूची बनाना, संघशक्ति एवं पथ-प्रेरक के ग्राहक बनाना, आगामी सत्र के लिये शिविरों का निर्धारण करना, संभाग में संघ कार्य का विस्तार करना आदि।
- **महाराव शेखा जी का बलिदान दिवस–** श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन ने दिनांक 30 अप्रेल अक्षय तृतीया को कांस्टीट्यूशन क्लब के पृथ्वीराज चौहान सभागार में महाराव शेखा जी के 537वें बलिदान दिवस का समारोह आयोजित किया। जिसमें वक्ताओं ने राव शेखा जी को नारी सम्मान का रक्षक, शेखावाटी जनपद का संस्थापक, धर्म सहिष्णुता एवं कुशल प्रशासक बताया। श्री क्षत्रिय युवक संघ के संरक्षक श्री भगवान सिंह जी रोलसाहबसर ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि हमारे महापुरुष वर्तमान समस्याओं के निराकरण के लिए पगडण्डी नहीं अपितु राज मार्ग बनाकर गये हैं। हमें तो केवल उनका अनुसरण करना है। आपने कहा कि जयंतियाँ तथा बलिदान दिवस उन महापुरुषों की मनाई जाती है जो सबको साथ लेकर निराश्रितों को आश्रय देते हैं। शेखा जी ने आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व जनतांत्रिक व्यवस्थाएँ स्थापित की थी जो हमारे लिए प्रेरणादायक है। सांसद राव राजेन्द्रसिंह जी ने महाराव शेखाजी की महत्ता का विस्तार से विवरण किया। विधानसभा अध्यक्ष श्री वासुदेव देवनानी तथा श्री सतीश पूनिया ने भी अपने विचार रखे।
- **श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन की गतिविधियाँ–** श्री क्षत्रिय युवक संघ के अनुसांगिक संगठन श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन की तीन दिवसीय कार्यशाला अजमेर जिले के सिंहावल गाँव स्थित रीजनल ड्राइविंग ट्रेनिंग सेन्टर में संपन्न हुई। जिसमें संघ की शिक्षण प्रणाली तथा फाउण्डेशन के उद्देश्यों पर चर्चा

(शेष पृष्ठ 22 पर)

चलता रहे मेरा संघ

(मेवाड़ क्षेत्र के अपने प्रवास के समय माााननीय भगवान सिंह जी (तत्कालीन संघप्रमुख) द्वारा एक स्थान पर दिए गये उद्बोधन का संक्षेप।)

भगवान श्री कृष्ण द्वारा उद्बोधित गीता के तीसरे अध्याय के श्लोक 21 से 24 कहते हैं –

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्त देवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते।। –21
न मे पार्थास्ति कर्तव्यंत्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्त व्यं वर्त एव च कर्मणि।। –22
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।। –23
उत्सी देयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः।। –24

भगवान कहते हैं कि मुझे कुछ भी अप्राप्त नहीं है। जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ ऐसा कुछ भी÷शेष नहीं है और ऐसा कुछ भी शेष नहीं है जो मेरे जीवन में करने योग्य रह गया है। फिर भी मैं निरन्तर कर्म में रत रहता हूँ। क्यों रहता हूँ? क्योंकि लोग मुझे देखते हैं। मैं कर्म में रत नहीं रहा तो लोग मेरे आचरण के अनुसार बरतने लग जाएँगे जिससे बड़ी हानि हो जाएगी और कर्मरत न रहकर मैं प्रजा का हंता बन जाऊँगा। प्रजा के पतित होने का कारण बन जाऊँगा। इसलिए चाहे मेरे लिए आवश्यकता है या नहीं लेकिन लोग मेरी ओर देख रहे हैं। यह हमारे लिए बताया गया ज्ञान है। यह क्षात्रधर्म के अनुसार जीवन बनाने का ज्ञान है।

साधु-संतों से, सन्यासियों से, अच्छे-अच्छे लोगों से मिलना होता है जो बड़े प्यार पूर्वक कहते हैं-इन राजपूतों को क्या हो गया है? ये सो क्यों रहे हैं? अभी गाये गये सहगीत में भी ऐसा ही था-'अब क्यों खड़ा तू मौन है, ओ कौम के जवान?'' लोग हमारी ओर देख रहे हैं। हमारे गौरवपूर्ण इतिहास को जानते हैं। उस समय के हमारे पूर्वजों के आचरण से हमारे आज के आचरण की तुलना करते हैं, तब लोग सोचते हैं कि यह कौम तो श्रेष्ठ कर्म करने वाली है तो अब ये उस श्रेष्ठता की ओर क्यों नहीं बढ रहे? इनके जिन पूर्वजों ने श्रेष्ठता का आचरण किया, उनके रक्त के अवशेष बचे हुए होने ही चाहिए और इनको भी उसी प्रकार के कार्य करने चाहिए।

एक घोड़ा है उसे देखभाल से उत्तम घोड़ा बनाया जा सकता है लेकिन एक गधे को तो घोड़ा नहीं बनाया जा सकता। घोड़ा यदि कमजोर हो गया है तो उसे ताकतवर बनाने के लिये निरन्तर प्रयास किए जाने आवश्यक हैं। जिनके पूर्वजों के उज्ज्वल चरित्र रहे हैं, उनको भी निरन्तर प्रयास करके पूर्वजों जैसे उज्ज्वल चरित्र वाला बनाया जा सकता है। हमारे पूर्वजों ने भारत को पूरे संसार में आदर्श देश बनाया है। अतः लोगों की अपेक्षाएँ हैं कि यह कौम क्यों नहीं पूर्वजों के मार्ग पर कदम बढा रही है। हमने लोगों का मार्ग नहीं बताया तो लोग देख रहे हैं चारों ओर और भटक रहे हैं। कितने गुमराह हो गए हैं हम, कितने सो गए हैं हम और गाँवों में कहावत है-'सूतोड़ा की भैंस पाडोल्यावै'। सोते रहने से हमारी भी स्थिति ऐसी ही हो गई है।

हमारी क्षत्रिय कौम सदा जागरूक रही है। हमारा एक राष्ट्रीय चरित्र है, हमारा एक कौमीय चरित्र है। तब हम ऐसा क्यों नहीं सोचते कि मैं कुछ ऐसा न करूँ कि लोग मेरे पर अंगुली उठाएँ, मेरी कौम पर अंगुली उठाए। जो सदैव जाग्रत रहता है वह इसे सदैव याद रखता है। मैं क्षत्रिय हूँ, मैं भारतवर्षी हूँ और हमारा नाम संसार में सदैव उज्ज्वल रहा है। भारतवर्ष को पूरे संसार को मार्ग दिखाने वाला किसने बनाया? हमारे पूर्वजों ने अपने उज्ज्वल चरित्र से भारतवर्ष को मार्ग दिखाने वाला भारतवर्ष बनाया पर आज हम क्या कर रहे हैं? क्या हम कल्पना कर रहे हैं कि महाराणा प्रताप

(शेष पृष्ठ 18 पर)

पूज्य श्री तनसिंह जी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

पूज्य श्री तनसिंह जी की जीवनगाथा में अभी तक जो भी लिखा गया है, वह नगण्य सा ही है। पूज्य श्री जब चौपासनी विद्यालय में अध्ययनरत थे, उनके सहपाठी एवं रूममेट शम्भूसिंह जी खोखरा ने पूज्य श्री के छात्र जीवन के कुछ संस्मरण बताये जो पूज्य श्री की जीवनगाथा का ही हिस्सा है। पूज्य श्री के छात्र जीवन के संस्मरण जो शम्भूसिंह जी खोखरा ने व्यक्त किये हैं, उन्हीं की जुबानी–

''खरा श्यामवर्ण, उभरा हुआ ललाट, उठी हुई कपोल अस्थियाँ, पतली भौंहें, छोटी आँखें, तीखी नासिका एवं ठुड्डी, ऐसा ही कुछ चेहरा था मेरे–सहपाठी एवं रूममेट का।

''राजपूत स्कूल चौपासनी में श्री तनसिंह जी ने कब प्रवेश पाया, यह मैं नहीं जानता, किन्तु शायद सन् 1939–40 में मेरा उनसे प्रथम सम्पर्क हुआ जो विचारों की समानता के कारण प्रगाढ़ से प्रगाढ़त्तर होता गया।

हमारी स्कूल के वाइस प्रिंसिपल ने कुछ चुने हुए छात्रों की एक कक्षा गठित की जिसको वे अंग्रेजी भाषा पढाते थे। उल्लेखनीय है कि इसी कक्षा में से प्रथम बार ऐसे बुद्धिजीवी छात्र निकले जिनमें से श्री तनसिंह जी सहित आगे चलकर चौदह वकील हुए। एक केन्द्र दिल्ली में पुलिस कमिश्नर के उच्च पद तक पहुँचे। एक छात्र ने ललितकला में निपुणता प्राप्त की जो उत्तम सरोदवादक होने के साथ एक ख्याति प्राप्त चित्रकार भी हैं। सहपाठी एवं रूममेट होने के नाते मेरा और तनसिंह जी का गाढ़ा सम्पर्क बनना स्वाभाविक था।

''आज जब मैं पीछे मुड़कर सोचता हूँ तो पाता हूँ कि उस सरल स्वभाव वाले व्यक्ति में दृढ़ विचारों का एक अचल सुमेरू था, जो उनके भावी जीवन में स्पष्ट हो आया था।

''बचपन में ही उनके सिर से पिता श्री का वरदहस्त हट चुका था, माता श्री की ममता उन्हें सम्बल प्रदान करती थी। उनके (शायद) सौतेले भाई प्राय: उन्हें देखने आया करते थे। उन दिनों उनकी दशा को देखते हुए यह समझना सम्भव नहीं था कि इस बालक में बेजोड़ नेतृत्व शक्ति छुपी हुई है।

''नेता शब्द जनमानस में कुछ हेय सा लगता है, किन्तु यहाँ मेरा नेता शब्द से तात्पर्य ''यो नयति, स नेता'' तक ही नहीं है अपितु अभिप्राय: उस नेता से है जो विपरीत परिस्थितियों में भी जनसमूह को अपने मौलिक विचार पथ पर लेकर आगे बढता जाता है। यही सब कुछ श्री तनसिंह जी ने करके दिखाया। जिन सपनों को हमने अपने छात्र जीवन में संजोया था उन्हें उन्होंने सच कर दिखाया।

''श्री तनसिंह जी में आरम्भ से ही विचार मन्थन चल रहा था। जिसके सामने उनका औपचारिक अध्ययन गौण सा प्रतीत होता था। हमारे आपसी विचार का विषय प्रात: राजपूत समाज की दशा एवं दिशा ही रहा करता था। समाज में नयी चेतना का संचार कैसे हो यह कठिन प्रश्न सदैव कुरेदता रहता था। ऐसा मौन और विचारशील व्यक्ति प्राय: लोगों की चुहलबाजी का पात्र बन जाया करता है। ऐसा ही उनके साथ भी हुआ। उनकी पुष्ट जांघों पर कसी हुयी छोटी नीकर की कोई मजाक उड़ाता तो कोई बेढंग से बन्धे उनके केसरिया साफे पर हंसता था। कुछ छात्र उनके श्याम शरीर पर उभरे रूखेपन पर मालिश करने का उपदेश देते थे, तो कोई मस्तहाल कपड़ों पर ताने कसता और वे थे कि उनके तानों को नजरअन्दाज ही नहीं करते अपितु अपनी धुन में अधिक रम जाते थे। जब कभी कोई मन चला छात्र उनके फक्कड़पन का मजाक उड़ाता तो वे उसकी तरफ पीठ फेरकर खड़े हो जाते। अति पर कभी–कभी मुड़कर झिड़की भी सुना देते थे। ऐसी दशा में उनके खड़े रहने का ढंग आज भी मेरे सामने चित्रित हो जाता है। बेरुखी से आकाश की ओर

देखते रहना, मुट्ठियाँ कसकर हाथों को कमर पर धर लेना और असह्य मजाक को देखकर चल देना ऐसा ही कुछ उनका स्वभाव था। किन्तु जब कभी औपचारिक वाद-विवाद, बैठक, सभा का अवसर आया तो उनके धारा प्रवाह आक्षेपों और व्यंगों की मार के सामने उन नासमझों को न केवल उठ के भाग जाते देखा अपितु रोष में रुआंसे होते भी देखा है। सुन्दर अक्षरों में वे कागज से कागज जोड़कर आलेख का पूरा एक बन्डल बना देते थे और जब पढना शुरू करते तो उस बण्डल को नीचे ढलकाकर अबाध पढते हुए एक कौतुहल सा पैदा कर देते थे। एक बार लिखे आलेख को पुन: संशोधित करते मैंने उन्हें कभी नहीं देखा जब लिखते तो सपाटे के साथ लिखते ही जाते थे। मेरा सभी से सहज सम्पर्क था अत: मैं उन्हें श्री तनसिंह जी के प्रति ठीक व्यवहार करने के लिए आगाह किया करता था।

''खेलों में उनकी कोई खास रुचि नहीं थी। उद्दण्ड छात्रों के परेशान करने के कारण वे फुटबॉल, हॉकी आदि नहीं खेलते थे। हाँ रींग (डेक-टैनिस) का खेल उन्हें बहुत पसन्द था कि जिसके वे स्कूल के श्रेष्ठतम खिलाड़ी थे किन्तु चौपासनी के मुख्य खेल फुटबॉल, हॉकी ही थे, जिसमें स्कूल की टीम का स्तर राज्य स्तरीय जोधपुर लान्सर्स, सरदार इनफेन्टरी और रेल्वे लोको की टीम के समकक्ष था। यही नहीं उन दिनों के प्रसिद्ध अखिल भारतीय लाभ शंकर टूर्नामेन्ट में कुवेटा आदि की टीमों को भी पराजित किया व टूर्नामेन्ट में रनर्स रह चुकी थी। श्री तनसिंह जी अपने दमखम के बल पर लम्बी दौड़ों के अच्छे धावक थे। स्काउटिंग में श्री तनसिंह जी का कोई योगदान नहीं था। हाँ एक घटना ने उनको एक उत्तम तैराक बना दिया। ग्रीष्मकालीन अवकाश में हम दोनों ने मेरे गाँव में कुछ समय बिताने का विचार किया था। उस दिन सभी स्कूल से अवकाश की घन्टी के बजने के इन्तजार में थे। घन्टी बजी और छात्रों का कोलाहल बढ़ गया। सभी अपने-अपने छात्रावासों को भागे और बोरिया बिस्तर लेकर रफू-चक्कर होने लगे। इतने में एक चपरासी ने आकर श्री तनसिंह जी को प्रिंसीपल के ऑफिस आने को कहा। मैंने उनका इन्तजार किया किन्तु जब वे लौटे तो वे उदास थे। पूछने पर ज्ञात हुआ कि तैराकी में कमजोर होने के कारण उन्हें अपने तैराकी के स्तर को बढाने के लिये रोक दिया गया है। अवकाश की समाप्ति पर मैंने उन्हें एक उत्तम तैराक पाया। उन दिनों स्कूल के छात्रों की लंगोट देखकर ही उसके तैराकी के स्तर को समझा जा सकता था। वे नीली लंगोट धारी हो चुके थे। लाल एवं खाकी लंगोटें मध्यम एवं निम्न स्तर की तैराकी की द्योतक थी।

''उनकी अभिरुचि सांस्कृतिक कार्यकलापों में भी थी, जिसमें वाद-विवाद, काव्य पाठ, निबन्ध लेखन आदि के साथ अभिनय में भी उनकी रुचि थी। एक अवसर पर मैं आश्चर्यचकित रह गया जब उन्होंने एक मुसलमान महिला का अभिनय करने की ठानी। कारण वश उनका यह हठ अनोखा था। जिस स्कूल में बाल रखना भी उन दिनों हेय समझा जाता था, वहाँ एक महिला का अभिनय और वह भी एक मुसलमान महिला का, यह एक विचित्र बात थी।

''उद्दण्ड छात्र उन्हें ''तनजी बीबी''-''तनजी बीबी'' कहकर चिड़ाने की कोशिश करते किन्तु वह दृढ़ता का धनी ऐसी हरकतों की कब परवाह करता। ऐसी बात नहीं है कि वे केवल शुष्क स्वभाव व्यक्ति ही थे। वे विनोद प्रिय भी थे, किन्तु बड़ी सावधानीपूर्वक केवल अंतरंग मित्रों के साथ ही विनोद करते थे।

''राजकीय डिस्पेन्सरी के डॉक्टर उनके विनोद के पात्र थे। उनकी हास्यास्पद डींगों का वे खूब आनन्द उठाते थे। उन पर उन्होंने कई सोरठे रच डाले थे। मुझे उनका एक ऐसा ही सोरठा याद आया जो इस प्रकार है-

''डॉक्टर भेरुदास खेल खिलाड़ी साँतरा।
जो मिल जावे पास गोल साथ दे सेनिया।।''

राजिया, किशनिया आदि की तरह उन्होंने अपने सोरठे सेनियाँ के नाम से लिखे। उदण्ड छात्रों को तिलमिला देने वाले सोरठों में से एक मुझे आज भी याद है, जो इस प्रकार है-

''धोळे दिन धाड़ांह भवन पड़ंता मोखला।
राँगड़ कर राड़ाह सबक सिखावे सेनिया।।''

''श्री तनसिंह जी में उत्तम धार्मिक प्रवृति भी थी। वे शक्ति के उपासक थे तथा नवरात्री के दिनों में अखण्ड उपवास रखते हुए हवन आदि की क्रियाएँ भी करते थे।

''इन दिनों द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हो चुका था। यूरोपीय राष्ट्र एक के बाद एक जर्मनी के सामने घुटने टेक चुके थे। अंग्रेज अपने आपको असहाय महसूस करते थे।

''हमारे प्रिंसीपल मि. ए.पी. कॉक्स एक योग्य किन्तु अंग्रेज साम्राज्यनिष्ठ व्यक्ति थे। चौपासनी स्कूल वैसे भी एक सैनिक स्कूल की तरह था। स्कूल के आयुधालय में 200 डमी राईफल्स और चार सर्विस राईफल थी। वयस्क छात्रों के लिये सैनिक कवायद ही नहीं वर्ष में एक बार रेंज पर फायरिंग का अभ्यास करना भी अनिवार्य था। इसी सैनिक प्रशिक्षण के आधार पर इस स्कूल ने भारतीय सेना को श्रेष्ठतम सैनिक दिये जिनमें ''परमवीर मेजर श्री शैतानसिंह भाटी'' को सभी जानते हैं। हमारे प्रिंसिपल सेना में भर्ती होने के लिए प्रोत्साहित करते थे किन्तु हम दोनों की रुचि इसमें कत्तई नहीं थी।

''हमारी रुचि देश और राज्य में व्याप्त राजनीतिक गतिविधियों में थी। राष्ट्रीय स्तर पर जहाँ हमारी सहानुभूति स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रति थी, वहीं राज्य स्तर पर तथाकथित राजनीतिज्ञों के भौंड़े व्यवहार के प्रति असहमति थी। जोधपुर राज्य में लोक परिषद नाम की एक राजनैतिक संस्था आन्दोलनरत् थी, उसका प्रजासेवक नाम से एक साप्ताहिक पत्र भी निकलता था। इनके सम्पादक श्री अचलेश्वर प्रसाद शर्मा थे। पत्र में प्रकाशित होने वाले लेखों में कुछ बेहूदे लेख भी होते थे जो वर्ग विशेष पर व्यर्थ का कीचड़ उछालते थे। इनके विरुद्ध हमने सम्पादक महोदय से पत्र व्यवहार किया, साथ ही में कुछ लेख भी प्रकाशनार्थ भेजे ताकि पाठक सही पक्ष को भी समझें किन्तु उनके ''कान पर जूं'' तक नहीं रेंगी।

''जब श्री तनसिंह जी की लेखनी ने उग्रता अपनाई तो सम्पादक महोदय तिलमिलाये तथा अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में झुंझलाहट झलकाते हुए उस लेख को प्रकाशित किया। ऐसा भी श्री तनसिंह के छात्र जीवन का एक पक्ष रहा है।

''आरम्भ में लिखा जा चुका है कि हमारे उस छात्र जीवन का रुझान समाज परस्त था। इस प्रसंग में हमने स्कूल में सन् 1940-41 में छात्र सुधारक संघ नाम एक संस्था स्थापित की। इसके माध्यम से छात्रों में सामाजिक चेतना लाने का प्रयत्न किया किन्तु उस स्कूल में यह कार्य एक समय से पहले उठाया गया कदम प्रतीत हुआ। इस कार्य में उपदेश देते हुए भी हमारे वाइस प्रिंसिपल साहब की उदासीनता एवं उपेक्षा स्पष्ट थी। यह लिखते हुए खेद होता है कि स्कूल के कार्यकलापों में सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनैतिक रुचि का अंकुरण भी कठिन था। ऐसी परिस्थितियों में श्री तनसिंह जी के सारे प्रयत्नों को कौन समझता?

''ऐसे ही दृढ़ प्रयत्नों का मानस बनाकर जिनमें मुख्य एक संघ का निर्माण सामाजिक पत्रिका का प्रकाशन एवं बालिका शिक्षा के संकल्प के साथ सन् 1942 में हमने स्कूली शिक्षा समाप्त की और बिछुड़ गये।

''उल्लेखनीय है कि मेट्रिकुलेशन की परीक्षा के कुछ मास पूर्व मैंने श्री तनसिंह जी से दृढ़तापूर्वक आग्रह किया कि अन्यान्य कार्यों से ध्यान हटाकर पढने पर ध्यान केन्द्रित करें ताकि एक उद्देश्य की पूर्ति हो सके। उन्होंने वैसा ही किया और शिक्षा के क्षेत्र में प्रदान किये जाने वाले स्वर्ण पदक को प्राप्त कर अपने को प्रत्यासी मानने वाले मुझको टापते ही रख दिया। ऐसे थे छात्र श्री तनसिंह जी।

''पिलानी में पढ़ते हुए उत्थान नामक एक हस्तलिखित पत्रिका भी सरकुलेट की जिसे हम लोग आगे से प्रेषित करते थे। एक वर्ष तक आग्रहपूर्वक मुझे पिलानी आकर शिक्षा सुचारू रखने को वे कहते रहे परन्तु परिस्थितियों वश मैं ऐसा नहीं कर सका। बाद में जीवन में मुझे यदाकदा मिलकर वही स्नेह और सम्मान दिया। उन्होंने अपने सभी संकल्पों को मूर्त रूप दिया और जिन परिस्थितियों से उठकर ''श्री क्षत्रिय युवक संघ'' जैसी संस्था का निर्माण कर समाज की सेवा की है, वह अद्वितीय है।''

(क्रमशः)

अर्थबोध

इतिहास की चोटों का.....

– अजीतसिंह धोलेरा

किसी भी जाति और समाज का अस्तित्व उसके इतिहास के सांगोपांग अध्ययन पर आधारित होता है। इतिहास की उपेक्षा व विस्मृति से जाति के अस्तित्व पर खतरा मंडराता रहता है। विकृत इतिहास पढ़ने से व पढाने से भी समाज में विकृतियाँ आती हैं। ऐसा इतिहास अविश्वसनीय बन जाता है और समाज का उस पर विश्वास नहीं रहता अत: उसका गौरव भी नहीं अनुभव होता।

क्षत्रियों के और उससे पूरे भारत के दुर्भाग्य से विधर्मी व विदेशियों द्वारा लिखा हुआ इतिहास हम पढते हैं और पढाते हैं। भारत का इतिहास अधिकतम क्षत्रियों के सम्बन्ध में होने से ऐसे विकृत व पक्षपाती इतिहास से सबसे ज्यादा नुकसान क्षत्रियों को हुआ है। इतिहास के सच्चे व पूर्ण ज्ञान के अभाव से क्षत्रिय वर्तमान में राह से भटककर समाज निरपेक्ष, वैयक्तिक, स्वार्थी जीवन जीने लगा है।

क्षत्रिय समाज की आज की काली अंधेरी रात्रि में श्री क्षत्रिय युवक संघ का जगमगाता दीपक है, जो गाँव-गाँव, घर-घर जाकर क्षत्रियों से मिलकर, समझाकर स्वधर्म के प्रति जाग्रत करने का, खोया हुआ गौरव पुन: प्राप्त करने के लिए सच्चे इतिहास का ज्ञान देने का पवित्र, मूल्यवान, मगर बहुत ही कठिन दायित्व लगभग आठ दशक से निभा रहा है। इस कार्य में संघ को कई प्रकार के संघर्षों से जूझना पड़ रहा है। वर्तमान युग की दृष्टि से बहुत बड़ा बलिदान दे रहा है और प्रतिकूल परिस्थिति से बिना घबराये समाज के युवक-युवतियों को गौरवपूर्ण बलिदानों से भरा पड़ा, विश्व में बेजोड़, ऐसे इतिहास की शिक्षा संघ के प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से दे रहा है। समाज के किशोर व युवकों को संघ के शिविरों में आने का अनुरोध किया जाता है। फिर भी उसका अपेक्षित प्रतिवाद अभी मिल रहा नहीं है। शिविरों के कार्यक्रम संघर्षपूर्ण होते हैं और हमारे उदयमान युवक बहुत ही सुकुमार जीवन जीने के आदती हो गए हैं। अत: वे यथासम्भव संघ से दूर रहने में ही अपनी सलामती मानते हैं। अपनी शक्ति, संपत्ति व समय वे स्वयं के लाभ के लिए हो, ऐसी प्रवृतियों में ही व्यय करने में समझदारी मानते हैं।

किन्तु हम सभी को, विशेष रूप से जिनके कंधे पर धर्म, संस्कृति व समाज के स्वास्थ्य व विकास का दायित्व है, वैसे हमारे युवकों को समझ लेना चाहिए कि इतिहास समाज का प्राण है, इतिहास भूल जाने अर्थात् समाज के प्राण चले जाने से समाज सिर्फ व्यक्तियों की टोली बना रहेगा। पूज्य तनसिंह जी ने एक गीत में गाया है- 'रे प्राण गए तो देह नाश से कभी बचा पाओगे क्या?' मतलब इतिहास रूपी प्राण चले जाने से समाज शरीर कभी बच सकता है?

हमारे इतिहास ने हमको गौरव बक्षा है तो उसके साथ स्वार्थ, प्रमाद, अहंकार आदि दोषों का शिकार भी बनाया है और हमने भूतकाल में ऐसा आचार किया है कि जिसके गहरे घाव समाज पर लगे हैं। ऐसे घावों के संदर्भ में पूज्य तनसिंह जी ने गाया है-

इतिहास की चोटों का इक दाग लिए फिरते हैं।
सीने के घराने में इक दर्द लिए फिरते हैं।।

हम भूल नहीं सकते महमूद तेरी गजनी।
अब तक भी आँखों में वह खून लिए फिरते हैं।। इति..
बाबर तेरे प्याले टूटे बता कितने?
पर सरहद्दी का अफसोस लिए फिरते हैं।। इति..
झाला था इक माना कूरम था इक माना।
सोने के लगे जंग पे अचरज लिए फिरते हैं।। इति..
कर्जन तेरी दिल्ली में अनमी था इक राणा।
सड़कों पे गिरे ताजों के रत्न चुगा करते हैं।। इति..
आपस में लड़े भाई गैरों ने हमें कुचला।
अब मिलकर मरने का अरमान लिए फिरते हैं।। इति..

पूज्य तनसिंह जी इतिहास के प्रखर ज्ञाता थे। उन्होंने इतिहास का गहन व तटस्थ अध्ययन किया था। हमारी भयंकर भूलों के परिणामस्वरूप हम परस्पर लड़कर मरे, विधर्मी शत्रुओं के सहायक व पथदर्शक बने और जाति व

देश को गुलाम बनाया। पूज्य तनसिंह जी के संवेदनशील व कोमल दिल को इसके कातिल घाव लगे हैं। मुझे और आपको ऐसे घाव शायद ही लगेंगे क्योंकि हम इतिहास ही नहीं जानते और जो जानकारी है वह विकृत, अधूरी व पक्षपातपूर्ण है। तदलावा हमारे कलेजे कठोर हो गए हैं। संवेदनाहीन हो गए हैं हम। हम इतिहास, राष्ट्र, समाज के प्रति बेफिक्र बनकर व्यक्तिगत जीवन में ही राच रहे हैं।

पूज्य श्री कहते हैं- 'सीने के घरावे में इक दर्द लिए फिरते हैं' अर्थात् हृदय में ऐसे लगे घावों की पीड़ा आज भी अनुभव कर रहे हैं। उस पीड़ा को लेकर हम जी रहे हैं। ऐसे एक घाव का उदाहरण देते पूज्यश्री ने गाया है-'हम भूल नहीं सकते महमूद तेरी गजनी'। मुस्लिम आक्रामक लुटेरा महमूद गजनी ई.सं. 1026 में भारत को लूटने के लिए आया। भारत के विघटित और आपस में लड़ते-झगड़ते राजाओं का उसने पूरा फायदा उठाया और ठेठ पंजाब से लेकर सौराष्ट्र तक के राजाओं को हराता, नगरों को लूटता, नागरिकों को कत्ल करता-कराता सोमनाथ तक आ पहुँचा। भगवान सोमनाथ का मंदिर लूटा, तोड़ा, हजारों क्षत्रियों व ब्राह्मणों की कत्ल की।

पूज्य श्री कहते हैं कि क्षत्रिय अपनी लापरवाही, अहंकार व ईर्ष्या के वश होकर अपना फर्ज, कर्तव्य भूलकर, संगठित होकर एक साथ महमूद का सामना करने, प्रजा की रक्षा करने व आबरू को बनाए रखने के पवित्र दायित्व से विमुख हो गए। परिणामस्वरूप भारत को बहुत सहन करना पड़ा, खोना पड़ा। इस कमी का खून अभी तक अपनी आँखों में है। अपनी मतलब किसकी, पाठक! आपकी आँख में ऐसी कोई पीड़ा है?

इतिहास का ऐसा ही एक दूसरा उदाहरण देते हुए पूज्य श्री ने गाया है-'बाबर तेरे प्याले टूटे बता कितने?' मुगल हमलावर बाबर को भारत का बादशाह बनने के पहले मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह जी (राणा सांगा) के साथ भयंकर युद्ध करने पड़े थे। युद्ध में पराजय मिलने से व्यथित और क्रोधित बाबर ने शराब के प्याले तोड़ कर फेंक डाले तथा भविष्य में जीवन में शराब न पीने की कसम भी खाई। अगली बार के हमले में बाबर की सेना में तोपें थी तो महाराणा की सेना तलवार से लड़ रही थी। तोपों की परवाह न करके महाराणा की सेना ने बाबर की सेना से कड़ा मुकाबला किया। सरहदी के माध्यम समझौते की बात की पर महाराणा ने समझौते की बात स्वीकार नहीं की। सरहदी तो महाराणा का साथ न देकर सेना के साथ चला गया। युद्ध जारी रहा पर तोपों के कारण सेना का बहुत नुकसान हुआ और पराजय मिली। महाराणा भी घाव मिलने से बेहोश हो गए, जिनको युद्ध मैदान से हटाया गया।

पूज्य तनसिंह जी का ऋजु हृदय ऐसी करुण घटनाओं से गहरी चोट खाए, यह स्वाभाविक है। इतिहास में घटित हमारी भूलों में से महाराणा प्रताप के समकालीन दो मानसिंह जी का उदाहरण भी दिया है। एक है झाला मानसिंह जी जिन्होंने हल्दीघाटी के ऐतिहासिक व निर्णायक युद्ध में महाराणा प्रताप को शत्रु सेना से घिरा हुआ देखा तो अभूतपूर्व शौर्य दिखाते महाराणा की जिन्दगी खतरे में देखकर उनको बचाने के लिए दुश्मनों के घेरे को काटकर मानसिंह जी महाराणा प्रताप के पास पहुँच गये। मेवाड़ की खातिर, हिन्दू धर्म की खातिर महाराणा को युद्ध मैदान से हट जाने को समझाया। प्रताप का सिरस्त्राण अपने मस्तक पर रख लिया। शत्रु तो प्रताप को उनके मुकुट से ही पहचानते थे। मानसिंह जी को ही प्रताप मानकर चारों ओर से घेर लिया और उन पर टूट पड़े। बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए प्रताप की खातिर, स्वामी रक्षार्थ, देश हितार्थ अपना बलिदान दिया।

तो एक दूसरे मानसिंह जी थे जयपुर के, कूरम वंश अर्थात् कच्छावा वंश के शासक जो अकबर, एक विधर्मी बादशाह के सेनापति थे। वे हिन्दु धर्म के भूषण, अपने ही क्षत्रिय भाई प्रताप के सामने मुस्लिम सेना से लड़ रहे थे। पूज्य तनसिंह जी कहते हैं कि स्वर्ण स्वरूप जयपुर के मानसिंह जी विधर्मी के सैनिक बने यह आश्चर्य है और सोने पर लगे जंग जैसा है। यह क्षत्रिय की परम्परा नहीं थी। महाबलशाली शूरवीर मगर विधर्मी के साथ रहे यह आश्चर्य है, यही जंग है। अकबर ने जिनके कारण बड़े-बड़े युद्धों में

विजय पाई उन्हीं जयपुर नरेश को मारने के लिये अकबर ने जहर भरा दूध का प्याला उनके लिए तथा सादा दूध का प्याला अपने लिए मंगवाया। गलती से प्याले बदल गए तब मानसिंह जी बच गए। अकबर की मौत हो गई।

इतिहास में ऐसी कई घटनाएँ घटी हैं जिनका दुष्परिणाम हम सबको भुगतना पड़ा है। दुखद घटनाओं के बीच झाला मानसिंह जी की तरह मस्तक को गौरव प्रदान करने वाली घटनाएँ हैं। भारत के अन्तिम वायसराय माउण्टबेटन के पहले के वायसराय लार्ड कर्जन ने ब्रिटेन के राजा जार्ज पंचम के दिल्ली आगमन के समय भारत के सभी राजा महाराजाओं को अंग्रेज सम्राट को सलाम करने हेतु आने का कहा। तत्कालीन सभी राजा पहुँचे। सिर झुकाने सभी पहुँचे तो स्पष्ट है कि उत्तम गौरव जैसा उस समय यहाँ के राजाओं में था ही नहीं। मेवाड़ के नरेश, प्रताप के वंशज उस समय महाराणा फतेहसिंह जी थे। वे भी दिल्ली जाने के लिए रवाना हो गए। धर्म प्रेमी एक कवि ने एक काव्य भेजा कि महाराणाओं की अनमनी पन की सोने की थाली में महाराणा आज विधर्मी बादशाह को सलाम करने पहुँच रहे हैं वह सोने की थाली में लोहे की कील लगाने के समान है। आप जाएंगे तो मेवाड़ की अद्‌भुत व उज्ज्वल परम्परा के लिए कष्टमय व कलंकित कथा बनेगी।

महाराणा फतेहसिंह जी ने संदेश पढा। अपने गौरव के प्रति सावधान हो गए। अपने पूर्वजों की वीरोचित परम्परा याद आई। परिणाम की परवाह किए बिना वे समारोह में नहीं पहुँचे। कर्जन ने महाराणा फतेहसिंह जी की गैर उपस्थिति को गंभीर अपराध के रूप में लिया। परन्तु भारतीय राजाओं ने कर्जन को समझाया कि मेवाड़ हमारा सिरताज है। क्षत्रियों का वह गहना है। मेवाड़ी महाराणा आज दिन तक किसी के सामने झुके नहीं अत: वे आपके राजा के सामने आकर नमे यह हमको भी अच्छा नहीं लगता। और हम सब तो आए ही हैं। मेवाड़ के महाराणा तो अनमी थे, नहीं झुके लेकिन दूसरे सब राजा लोग ब्रिटेन के राजा के सामने झुके हैं, तब उनके मुकुट आदि नीचे गिर गए उनमें से हीरे मोती बिखर गए, उनको चुनना होगा। जो गौरव की क्षति हुई उसे बनाना होगा। ऐसी चोटें इतिहास में हमें लगी है।

'आपस में लड़े भाई गैरों ने हमें कुचला।' हम ईर्ष्यावश, अहंकारवश स्वार्थवश अपने ही भाइयों के साथ बहुत लड़े हैं। ऐसे झगड़ों में हम कमजोर हो गए। इसका अनुचित लाभ दूसरों ने, अर्थात् दुश्मनों ने पूरा लिया। इतिहास साक्षी देता है कि हम क्षत्रियों को और कोई कभी हरा ही नहीं सका। परन्तु जब कभी भी हम हारे हैं तब अपनों में से कोई न कोई दुश्मन की कुल्हाड़ी का हत्था बना था। ये कोई साधारण पाप नहीं है, ऐतिहासिक भयंकर भूलें थी। पर प्रश्न यह है कि इतिहास से हमें कुछ सीखना है या नहीं? या फिर आज भी ऐसी ही गलतियाँ करते रहना है?

पूज्य तनसिंह जी का कहना इतना ही है हम आज इतिहास का तटस्थ अवलोकन करें। अच्छी बात या गलत बात, दोनों बातों पर गहन चिन्तन करें। अच्छी बातों को, हमारी विशेषताओं को समाज में पुन: स्थापित करें। उनका प्रचार-प्रसार करें और साथ-साथ जिन कमजोरियों, बुराइयों के फलस्वरूप हम पराजित हुए थे और आज भी हो रहे हैं, उनको समझ के साथ नष्ट करें। यह बड़ा दुष्कर है और क्षतित्रयोचित संस्कारों के सिंचन से ही इसे कर सकेंगे।

श्री क्षत्रिय युवक संघ सन् 1946 से यह भागीरथ किन्तु बहुत ही मूल्यवान, समाज के अस्तित्व का आधार रूप यह कार्य कर रहा है। संघ समाज का सौभाग्य है। हम सबकी जिम्मेवारी है कि सामाजिक संगठन मेरी, अपनी या पूज्य तनसिंह जी की अकेले की नहीं, सारे समाज की आवश्यकता है। समय की माँग है। परिस्थिति का आह्वान है कि क्षत्रिय एक बनो, नेक बनो।

हम इस आवश्यकता को पूरी शक्ति से स्वीकार करके उसको पूरी करने के लिए बिना कोई बहाना बनाए यथोचित काम में लग जाएँ। हम इस आह्वान को स्वीकार करें और उसको ही जीवन का श्रेष्ठ पुरुषार्थ माने। और सोचें कि जीवन में इससे अधिक मूल्यवान, कल्याणकारी दूसरा कोई करणीय कर्म नहीं है। हमारा स्वधर्म हमको अनुरोध ही नहीं, आदेश करता है कि 'जमाने का है तकाजा, तब ही तो मांग तेरी।' जीवन को सार्थक करने के लिए हम युग की माँग व ईश्वर की इच्छानुसार जीवन जिएँ। **जय संघशक्ति!** ●

गौतम बुद्धः चार आर्य सत्य

– राजेन्द्रसिंह बोबासर

सिद्धार्थ ने नगर भ्रमण करते समय जब बीमार व्यक्ति, वृद्ध व्यक्ति, मृत व्यक्ति की शवयात्रा के दृश्य देखे तो उनका मन व्यथित हो गया। अब तक उन्होंने चारों तरफ खुशहाली ही देखी थी। सिद्धार्थ को अब तक बिताया सुख का जीवन क्षण भंगुर लगने लगा। नगर भ्रमण में उन्होंने महसूस किया कि राज महल से दूरस्थ स्थानों पर निवास करने वाले अधिकांश लोगों का जीवन दुख एवं कष्टों से भरा है। एक दिन वे सारथी के साथ वन क्षेत्र का भ्रमण कर रहे थे, वहाँ उन्हें एक व्यक्ति पेड़ के नीचे ध्यानमग्न अवस्था में दिखाई दिया। उसका चेहरा, बड़ा तेज युक्त व शान्त–शान्त लगा। सारथी ने उन्हें बताया कि ये तपस्वी हैं तथा सत्य की खोज में लगे हुए हैं। सिद्धार्थ ने विचार किया कि मुझे भी इस दुखमयी संसार से मुक्ति का मार्ग खोजना है, और एक रात गृह–त्याग कर वह जंगलों में निकल गये। 6 वर्ष तक निरन्तर कठोर तप व साधना से उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ–

चार आर्य सत्य :– बुद्ध तत्व दर्शन के प्रश्नों पर मौन रहे–ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक आदि। चिंतन, मनन करने पर गौतम बुद्ध ने पाया कि ईश्वरादि तत्वों पर दर्शन शास्त्र में विभिन्न मत प्रचलित हैं तथा तर्क द्वारा इन्हें सिद्ध करना भी सम्भव नहीं। जिसकी जैसी दृष्टि थी उसने ईश्वर की वैसी ही व्याख्या कर दी, इसी कारण इस समय भी अनेक दर्शन व अनेक विचार प्रचलित थे। कोई दर्शन साकार ईश्वर की कल्पना करता था तो कोई निराकार ईश्वर की बात करते थे, कोई दर्शन एकेश्वरवादी था तो कोई दर्शन बहुदेववाद का समर्थक था। कोई दर्शन द्वैतवादी था तो कोई अद्वैतवादी। इन सबके अलावा उस समय की धार्मिक व्यवस्था भी बड़ी जटिल थी। कर्मकाण्डों का बाहुल्य था। ब्राह्मणवाद का बोलबाला था। समाज की व्यवस्था विकृत हो रही थी। पूर्ण–व्यवस्था में विकृति आ गई थी। ऐसे में गौतम बुद्ध ने सुख व शान्ति की प्राप्ति के लिए बौद्ध दर्शन का प्रतिपादन किया, जिसका एक प्रमुख सिद्धान्त है चार आर्य सत्य–

1. सर्व दुखम्– गौतम बुद्ध ने बताया कि संसार में चारों तरफ दुख ही दुख है, जन्म से मृत्यु तक मनुष्य दुखों से घिरा रहता है। रोग, भूख, मृत्यु, जरावस्था, अप्रियजनों का मिलना, प्रियजनों का बिछुड़ना, प्राकृतिक आपदाएँ आदि दुख पहुँचाने वाली स्थितियाँ हैं। सुख अस्थाई है जैसे भोजन करने पर सुख का अनुभव होता है कुछ समय पश्चात पुनः भूख लग जाती है और दुख प्रकट हो जाता है। गौतम बुद्ध ने संसार को अनित्य बताया जो हर क्षण बदलता रहता है। कोई भी वस्तु हमें स्थाई सुख नहीं दे सकती जैसे व्यक्ति को मीठा भोजन सुख देता है यदि उसी व्यक्ति के मधुमेय रोग हो जाये तो मीठा उसके लिए जहर समान बन जाता है। गौतम बुद्ध ने इसीलिए बताया कि संसार दुःखों से आवृत है।

बुद्ध की इसी विचारधारा के कारण अन्य दार्शनिकों ने इसे निराशावादी दृष्टिकोण बताया। बुद्ध को नास्तिक एवं भौतिकवादी बताया पर गहनता से विचार करें तो बुद्ध बड़े आशावादी दार्शनिक थे। उनका मानना था कि जिस विषम स्थिति के अस्तित्व को ही यदि हम स्वीकार नहीं करेंगे तो उसका निवारण भी हम नहीं कर पायेंगे। जैसे कोई व्यक्ति रुग्ण है और वो अपने आपको स्वस्थ माने तो वह रोग का उपचार भी नहीं करेगा, तथा शनैः शनै: अधिक रुग्ण हो जायेगा। बुद्ध ने अपने चार आर्य सत्य के सिद्धान्त में प्रथमतः स्वीकार किया कि संसार दुःखमय है।

2. दुख समुदय :– (दुख का कारण) गौतम बुद्ध ने बताया कि हर घटना के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है जिसे उन्होंने कार्य–कारण या प्रतीत्य–समुत्पाद का सिद्धान्त कहा। मिट्टी के घड़े का निर्माण कार्य है तो कारण है कुम्हार तथा मिट्टी इन दोनों में से एक भी कारण अनुपस्थित रहने पर मिट्टी के घड़े का निर्माण नहीं हो सकता। इसी तरह

किसी व्यक्ति को दुख हुआ तो इसके कार्य कारण को बुद्ध ने एक 12 कड़ियों की श्रृंखला के माध्यम से समझाया जिसे **द्वादश निदान** कहा गया।

1. जरा मरण (दुख), 2. जाति (जन्म लेना), 3. भव (जन्म लेने की इच्छा), 4. उपादान (मोह), 5. तृष्णा (लालसा), 6. वेदना (महसूस करना) 7. स्पर्श (इन्द्रियों का विषयों से), 8. षडायतन (मनसहित पाँच इन्द्रियाँ), 9. नाम-रूप (मन व शरीर), 10. विज्ञान (चेतना), 11. संस्कार (पूर्व कर्म), 12. अविद्या (ज्ञान का अभाव)।

द्वादश निदान की ये कड़ियां क्रमशः एक-दूसरे पर निर्भर हैं। सरल शब्दों में समझें तो जरा जन्म अर्थात दुख का कारण है जाति अर्थात् जन्म लेना। जन्म लेने का कारण है 'भव' अर्थात् जन्म लेने की इच्छा। भव का कारण है 'उपादान' अर्थात् सांसारिक विषयों में मोह। उपादान का कारण है तृष्णा अर्थात् विषय भोगों के प्रति वासना। तृष्णा का कारण है 'वेदना' अर्थात् इन्द्रियानुभूति। वेदना का कारण है 'स्पर्श' इन्द्रियों का विषयों से सम्पर्क। स्पर्श का कारण है 'षडायटन' अर्थात् (मन+पाँच इन्द्रियाँ), षडायतन का कारण है नाम-रूप अर्थात् स्थूल शरीर। नाम-रूप का कारण है विज्ञान अर्थात् चेतना। विज्ञान का कारण है 'संस्कार' अर्थात् पूर्व जन्म के कर्म बन्धन। संस्कार का कारण है अविद्या अर्थात् ज्ञान का अभाव। ज्ञान के अभाव के कारण ही हम ऐसे कर्म कर बैठते हैं जो संचित होकर संस्कार बन जाते हैं तथा पुनः जन्म का कारण बनता है। बुद्ध का कहना है कि दुख का मूल कारण है ज्ञान का अभाव। यदि हमें ज्ञान प्राप्त हो जाये तो जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति हो जावेगे तथा हम निर्वाण को प्राप्त हो जायेंगे।

3. दुख निरोध :- गौतम बुद्ध ने संसार को दुखमय ही नहीं बताया बल्कि दुख क्यों उत्पन्न होते हैं इसके कारणों का विश्लेषण किया है साथ ही दुखों से मुक्ति मिल सकती है इसका भी पूरा आश्वासन दिया है। द्वादश निदान के अन्तर्गत दुख का मूल कारण अविद्या को माना है तथा अविद्या अर्थात् ज्ञान का अभाव की स्थिति को भी दूर किया जा सकता है इसके लिए उन्होंने मध्यम मार्ग का सिद्धान्त बताया। इस मार्ग को अष्टांगिक मार्ग कहते है।

4. दुख निरोध मार्ग या अष्टांगिक मार्ग :- दुखों से मुक्ति पाने के लिए शारीरिक सुख भोग एवं कठोर तपस्या के बीच का मार्ग चुना। बुद्ध दोनों ही स्थितियों से गुजर चुके थे। अपने आरम्भिक काल में खूब शारीरिक सुखों का उपभोग किया। 29 वर्ष की आयु तक उन्हें दुःखों की परिस्थितियों का बिल्कुल भी सामना नहीं करना पड़ा था। नगर भ्रमण के दौरान ही वे दुःखों के दृश्य देखकर व्यथित हुए थे। तत्पश्चात् 6 वर्ष तक कठोर तपस्या की जिससे उनका शरीर सूख कर कांटा बन गया था। बुद्ध ने दोनों ही परिस्थितियों पर चिन्तन किया तथा पाया कि सामान्य मनुष्यों के लिए इन दोनों के मध्य की स्थिति ही सहज रहेगी, जिसे मध्यम मार्ग का सिद्धान्त कहा गया। चूंकि इस मध्यम मार्ग के आठ चरण या अंग हैं अतः इसे अष्टांगिक मार्ग कहा गया-

1. सम्यक दृष्टि :- अष्टांगिक मार्ग के आठों अंगों के नामों के आगे सम्यक शब्द लगा है अतः सम्यक शब्द का अर्थ जानना जरूरी है। सम्यक का अर्थ है ठीक प्रकार से, सही ढंग से भली-भाँति तथा उचित प्रकार से। वैसे सम्यक शब्द का व्यापक अर्थ में उपयोग किया जा सकता है। सम्यक दृष्टि का सामान्य अर्थ है ठीक ढंग से देखना। यहाँ देखना शब्द का भी व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है इसमें हमारा दृष्टिकोण या नजरिया भी शामिल है। मन सहित इन्द्रियों का व्यवहार देखना भी सम्यक दृष्टि में आता है। बुद्ध द्वारा निर्वाण मार्ग के आठ अंग हैं और उसकी प्रथम सीढी है सम्यक दृष्टि। संसार में अनेक मत-मतान्तर हैं, पूजा की अनेक पद्धतियाँ हैं, उपासना के अनेक तरीके हैं, अनेक दर्शन शास्त्र हैं। इन सभी का लक्ष्य मोक्ष अथवा निर्वाण प्राप्त करना ही है, पर सामान्य मनुष्य इन्हें समझ नहीं पाता कि कौनसा मार्ग अथवा पद्धति अपनाऊं। वह कर्म काण्डों में उलझ जाता है। गौतम बुद्ध ने बताया कि इन सभी दृष्टिकोणों से अपने आपको मुक्त कर लो तथा ध्यान व चिंतन द्वारा

सम्यक दृष्टि की ओर बढ़ो। दूसरों के ज्ञान से हम अपना अज्ञान दूर नहीं कर सकते, इसीलिए बुद्ध ने कहा है अपना दीपक खुद बनो। अतः सम्यक दृष्टि अति महत्त्वपूर्ण है।

2. सम्यक संकल्प :– सम्यक दृष्टि के अन्तर्गत हमें एक मार्ग मिल गया। हमें उस पर चलना है। इसके लिए हमें तन–मन से तैयार होना है। इसके लिए हमें संकल्प लेना होता है क्योंकि संकल्प ही हमारी सारी ऊर्जा को संगठित कर निश्चित लक्ष्य की ओर लगा सकता है, यदि हमने संकल्प नहीं लिया तो हमारी ऊर्जा भी संगठित नहीं होगी वह भिन्न–भिन्न मार्गों की तरफ बहने लगेगी और हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पायेंगे। इसलिए हमे सभ्य संकल्प अर्थात् सही संकल्प लेना जरूरी है। हमारी संकल्प शक्ति शरीर, मन तथा अवचेतन तक जानी चाहिये, इसी के बल से हम असाध्य को भी साध सकते हैं।

3. सम्यक वाणी :– सम्यक वाणी का अर्थ है सही बोलना, मधुर बोलना। हमारे व्यवहार का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है हमारा बोलना। बोलने से ही बने हुए काम बिगड़ सकते हैं और बिगड़े हुए काम बन सकते हैं। गौतम बुद्ध ने **चार वाणी दुराचार** बताये हैं। – 1. झूठ बोलना, 2. चुगलखोरी, 3. कठोर बोलना, 4. मिथ्या बोलना (व्यर्थ की बकवास)। गौतम बुद्ध ने वाणी दुराचार के कारण भी बताये हैं यथा – लाम के लिए, स्वार्थवश, दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए, घृणा व द्वेष के कारण, भय तथा डर से तथा दूसरों को प्रभावित करने के लिए।

वाणी दुराचार से कुछ समय के लिए हमारा काम बन सकता है, हमारे अहंकार की तुष्टि हो सकती है पर वाणी का दुराचार जीवन में अस्थिरता लाता है। हमारे आध्यात्मिक स्तर को कमजोर कर देता है। इससे हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा में भी गिरावट आती है। इससे हमारी संकल्प शक्ति भी कमजोर होने लगती है और हम अपने लक्ष्य से भटकने लगते हैं अतः सम्यक वाणी का बड़ा महत्त्व है।

4. सम्यक कर्मान्त :– भवचक्र से मुक्ति दिलाने वाले कर्मों को सम्यक कर्मान्त कहा गया है। कर्मान्त शब्द का अर्थ है कर्म का अन्त। राग, द्वेष, मोह को नष्ट करने वाले कर्म। गौतम बुद्ध ने कर्म को दो भागों में विभाजित किया है– 1. अकुशल कर्म, 2. कुशल कर्म। अकुशल कर्म हमें भव–चक्र से बांधते हैं। हम जाने–अनजाने अकुशल कर्म किये जा रहे हैं। बौद्ध दर्शन में अकुशल कर्मों की संख्या दस है। जिन्हें तीन भागों में विभाजित किया गया है–

1. शरीर द्वारा कर्म – (i) चोरी (ii) हत्या, (iii) व्यभिचार।

2. वाणी द्वारा कर्म – (i) झूठ, (ii) चुगलखोरी, (iii) कठोर वाणी, (iv) व्यर्थ की बकवास।

3. मन द्वारा कर्म – (i) कलुषित सोच, (ii) मिथ्या सोच, (iii) मिथ्या दृष्टि।

उपरोक्त दस अकुशल कर्मों के करने से हम कर्म बन्धन में बंध जाते हैं। इन्हें समाप्त करने के लिए कुशल कर्मों का करना आवश्यक है जैसे– चोरी के स्थान पर अचौर्य, हत्या के स्थान पर अहिंसा, व्यभिचार के स्थान पर अव्यभिचार आदि। दूसरे शब्दों में दस अकुशल कर्मों के विपरीत कर्म करना। प्रेम, दया करुणा, मैत्री तथा सद्भावना युक्त कर्म करना ही कुशल कर्म है और सम्यक कर्मान्त है।

5. सम्यक आजीव (आजीविका) :– जीवन निर्वाह के लिए किया गया कार्य आजीव अथवा आजीविका कहलाता है यथा– कृषि, व्यापार, उद्योग, नौकरी या कोई भी सेवा कार्य जिससे हम अपना जीवन यापन कर सकें। गौतम बुद्ध ने जीवन यापन के लिए सम्यक् आजीव की बात कही है। वर्तमान में तो सभी प्रकार के कार्यों में असम्यकता नजर आती है। ऐसा लगता है कि इसके बिना हमारा जीवन–निर्वाह नहीं हो सकता, लेकिन जिन्होंने इससे पहले के चार चरणों (सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मान्त) का पालन कर लिया है उनके लिए सम्यक आजीव का पालन करना अत्यन्त सरल है। सम्यक आजीव का पालन कैसे करें? गौतम बुद्ध ने बताया कि ऐसे कर्म कर आजीविका करें जिससे हमारा पंचशील भंग न हो तथा दूसरों

का पंचशील भी भंग न हो। पंचशील क्या है? पंचशील में पाँच बातों को वर्जित बताया गया है- हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलना, मादकता या नशा। इसमें हमारा दायित्व है कि हम अपने पंचशील की रक्षा तो करें ही, साथ ही जिसके साथ हमने व्यापार किया है उसके पंचशील की रक्षा भी हो। उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति मदिरा बेचता है तो उसके पंचशील पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा परन्तु खरीदने वाला पंचशील से डिग जायेगा। इसी प्रकार कोई व्यक्ति चिकित्सक बन जाये और वो प्रार्थना करे कि लोग ज्यादा से ज्यादा बीमार पड़ें और मेरा धन्धा खूब चले तो वो पंचशील का पालन नहीं कर रहा। अतः प्राणी मात्र का हित लेकर हम आजीविका करें तो वो सम्यक आजीव है।

6. सम्यक व्यायाम :- व्यायाम को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं- 1. शारीरिक, 2. मानसिक।

शारीरिक व्यायाम से शरीर मजबूत तथा शक्तिशाली बनता है। स्वस्थ और कष्ट सहिष्णु बनता है लेकिन यहाँ गौतम बुद्ध ने मानसिक व्यायाम की बात कही है। जिससे मन को एकाग्र एवं स्थिर बनाया जा सके। मन की विचार शीलता बढे। उसमें परिस्थितियों के सही आंकलन की क्षमता बढे तथा विवेक जाग्रत हो सके। सम्यक व्यायाम द्वारा मानसिक शक्ति (प्रज्ञा) का जागरण किया जा सकता है। वह निरन्तर चार बातों का चिन्तन करता हुआ उनका दृढ़ता से पालन करने लगता है - 1. पापमयी अकुशल कर्म को नहीं करना 2. उत्पन्न हुए ऐसे अकुशल कर्मों का क्षय करना, 3. उत्पन्न नहीं हुए कुशल कर्म करना, 4. कुशल कर्मी का क्षय नहीं होने देना। सम्यक व्यायाम से हमें मानसिक दृढ़ता प्राप्त होती है तथा हम निर्वाण पथ पर अग्रसर होने लगते हैं।

7. सम्यक स्मृति :- स्मृति का अर्थ सामान्यतया याददास्त या स्मरण शक्ति से लिया जाता है। अध्ययन करने वाले विधार्थी अध्ययन के दौरान विषय वस्तु को कितना याद रख पाते हैं उसे स्मृति से जोड़ दिया जाता है। साधारणतया आजकल हम कह देते हैं- मुझे तो कुछ भी याद नहीं रहता मेरी स्मृति कमजोर हो गई है। गौतम बुद्ध ने सम्यक समृति का अर्थ बताया है, सजगता एवं सतत जागरूक रहना। अपने जीवन व्यवहार को सजगता से देखना ही मन की जागरुकता है। मन में उठे अकुशल विचारों (लोभ, मोह घृणा, द्वेष) को समाप्त करना। सम्यक स्मृति से ही हम सम्यक समाधि एक पहुँच सकते हैं अतः श्वासों पर नियन्त्रण एवं श्वासों को आते-जाते देखना जिससे सम्यक स्मृति दृढ़ हो सके। भूतकाल में किये गये अकुशल कर्मों का हम चिन्तन करते हैं कि अधिकांश कर्मों को हम भूल चुके हैं। ये भूले हुए अकुशल कर्म हमारे अवचेतन मन में संग्रहित होते हैं। श्वांस हमारे चेतन तथा अवचेतन मन के बीच की कड़ी है क्योंकि श्वास दोनों अवस्थाओं में चलती है। अतः सभी अकुशल कर्मों को हम श्वासों के माध्यम से देख सकते हैं और उनका क्षय कर सकते हैं। सम्यक स्मृति द्वारा ही हम अज्ञान के अन्धकार को दूर कर सकते हैं। इसी से हम अल्प अवधि के लिए राग-द्वेषादि विकारों से दूर हो सकते हैं। अभ्यास के द्वारा यह अवधि बढ़ाई जा सकती है। यही सम्यक स्मृति है।

8. सम्यक समाधि :- समाधि का सामान्य अर्थ प्राणायाम द्वारा श्वांस रोक कर स्थिर मुद्रा धारण कर लेना है लेकिन गौतम बुद्ध ने सम्यक समाधि की बात कही है- जिसमें पूर्ण रूप से जागृत रहते हुए भीतर (चित) की ओर यात्रा करनी होती है। मन को पूर्णतया विकार रहित बनाने की प्रक्रिया सम्यक समाधि कहलाती है। जैसा कि सम्यक स्मृति में जागरूकता का प्रारम्भिक अभ्यास किया जाता है। श्वास के द्वारा चेतन तथा अवचेतन मन को साधने का प्रयास किया जाता है। राग-द्वेष से अल्प अवधि की मुक्ति प्राप्त की जाती है। सम्यक समाधि में निरन्तर ध्यान तथा अभ्यास से अवचेतन मन को पूर्णतया प्रकाशवान बनाकर जाग्रत कर लिया जाता है। राग-द्वेष आदि षड्विकारों से पूर्णतया मुक्ति प्राप्त कर ली जाती है यही अवस्था निर्वाण की अवस्था कहलाती है निर्वाण प्राप्त व्यक्ति का जीवन शांत तथा सुखी बन जाता है। ●

द्रौपदी–सत्यभामा संवाद

– श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र'

श्री कृष्णचन्द्र द्रौपदी के पुत्रों को भी द्वारिका ले आये थे पांचाल से। प्रद्युम्न उन्हें अभिमन्यु और अनिरुद्ध के साथ ही अस्त्र–शिक्षा देते थे। पाण्डव जब अनेक स्थानों पर घूमकर फिर काम्यक वन में आ गये तो अर्जुन के मित्र एक ब्राह्मण ने आकर संवाद दिया– 'श्री द्वारिकाधीश यहाँ आने वाले हैं।'

इस बार श्री कृष्णचन्द्र महारानी सत्यभामा के साथ रथ में बैठे आये। बड़े हर्ष से पाण्डव उठे और यथोचित्त रीति से मिले। द्रौपदी और सत्यभामा गले लगकर मिलीं।

श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा– 'धर्म का पालन राज्य प्राप्ति से बढ़कर बतलाया गया है। शास्त्र धर्म की प्राप्ति के लिए ही तप का उपदेश करते हैं। आपने सत्य भाषण तथा सरल व्यवहार के द्वारा इस लोक और परलोक दोनों पर विजय प्राप्त कर ली है। आप सब निष्काम भाव से शुभ कर्म करते हो, धन के लोभ से स्वधर्म का त्याग नहीं करते अतः आप में दान, सत्य, तप, श्रद्धा, बुद्धि, क्षमा, धैर्य आदि सब कुछ है। राज्य पाकर भी आप इन सद्गुणों में स्थित रहे और विपत्ति में भी इनसे विचलित नहीं हुए, अतः निःसन्देह आपकी सब कामनाएँ पूर्ण होंगी।'

जो धर्म के परम प्रभु हैं उनकी प्रसन्नता के लिए ही तो धर्माचरण की सार्थकता है। उनको सुप्रसन्न देखकर धर्मराज सब भाइयों के साथ आनन्दित हुए।

श्री कृष्ण ने द्रौपदी को उनके पुत्रों का समाचार दिया– 'याज्ञसेनि! तुम्हारे सब पुत्र सुशील हैं। उनका धनुर्वेद सीखने में अनुराग है। वे द्वारिका में बहुत से मित्र पा गये हैं। उनके साथ सत्पुरुषों के आचार का पालन करते हुए प्रद्युम्न से अस्त्र–ज्ञान प्राप्त करने में उत्साहपूर्वक लगे हैं।

युधिष्ठिर ने गद्‌गद् स्वर में कहा– 'केशव! पाण्डवों के आप ही आश्रय हैं। हम सब आपकी ही शरण में हैं। अब हमने वनवास के बारह वर्षों मैं से अधिकांश घूम–फिरकर व्यतीत कर दिये हैं। आपकी कृपा से एक वर्ष अज्ञात रहकर काट देंगे और तब आपके आदेश का पालन करेंगे।'

इसी समय वहाँ कल्पान्त जीवी महर्षि मार्कण्डेय आ गये। पाण्डवों ने तथा श्रीकृष्ण ने प्रणिपात किया। विधिपूर्वक उनका पूजन किया। युधिष्ठिर के पूछने पर उन्होंने अनेक प्राचीन चरित सुनाये तथा श्रीकृष्ण के महात्म्य का वर्णन किया।

उस समय द्रौपदी और सत्यभामा अलग मिलकर बैठी थीं। बहुत दिनों के पश्चात् दोनों मिली थीं। राजसूय यज्ञ के पश्चात् ऐसा अवसर नहीं आया था। ऐसे अवसरों पर दोनो कुलों की वर्चा स्वाभाविक थी। परिहास चल रहा था परस्पर। ऐसी ही चर्चा के मध्य सत्यभामा ने पूछा–याज्ञसेनि! तुम्हारे पति लोकपालों के समान प्रभावशाली हैं, बलवान हैं, फिर भी वे तुमसे कभी रुष्ट नहीं होते। वे तुम्हारे वश में रहते हैं। तुम्हारा मुख देखते रहते हैं। ऐसी कौन–सी विद्या तुम्हारे पास है? तुम उनसे कैसे व्यवहार करती हो? यह रहस्य मुझे भी बतलाओ। मुझे भी कोई ऐसा व्रत, तप, स्नान, मन्त्र, ओषधि, विद्या, कला, हवन अथवा कड़ी बतलाओ जो यश और सौभाग्य की वृद्धि करने वाला हो और श्याम–सुन्दर उनसे सदा मेरे अधीन रहें।'

यह सुनकर पतिव्रता पांचाली बहुत गम्भीर स्वरमें बोली– 'बहिन! तुम मुझसे दुराचारिणी स्त्रियों की बात क्यों पूछती हो? तुम बुद्धिमती श्रीकृष्ण पट्टमहिषी हो, ऐसी बात मन में भी लाना तुम्हारे लिए योग्य नहीं है। यह तो उल्टा मार्ग है। जैसे ही पति को पता लगता है कि गृह–देवी उसे वश में करने के लिए मंत्र या तंत्र प्रयोग कर रही है तो उसका स्नेह समाप्त हो जाता है और वह उससे वैसे ही सावधान तथा दूर रहने लगता है जैसे लोग घर में घुसे सर्प से रहते हैं। ऐसी अवस्था में घर में शान्ति या सुख कैसे रह सकता है?'

'इस प्रयत्न में कई प्रकार के अनर्थ हो सकते हैं। धूर्त लोग यंत्र-मंत्र के बहाने ऐसी वस्तुएँ दे देते हैं जिससे भयंकर रोग हो जाते हैं। पति के शत्रु इसी प्रकार उन्हें विष तक दे देते हैं। ऐसी स्त्रियाँ अपनी दुर्बुद्धि के कारण पति को अनजान में ही ऐसी वस्तुएँ दे देती हैं कि उन्हें जलोदर, कुष्ठ, नपुंसकता, जड़ता, बधिरता जैसे रोगों से ग्रस्त होना पड़ता है। स्त्री को किसी प्रकार अपने पति का अप्रिय नहीं करना चाहिए।'

अब द्रौपदी ने अपनी चर्चा सुनायी। उसने कहा- 'सत्यभामा, मैं अहंकार और काम-क्रोध छोड़कर सब पाण्डवों की और उनकी दूसरी सब पत्नियों की सावधानी पूर्वक सेवा करती रही हूँ। ईर्ष्या द्वेष से दूर रहकर केवल सेवा के लिए ही मैं अपने पतियों के साथ सब व्यवहार करती हूँ। इतना करके भी मैं अभिमान नहीं करती। मेरी वाणी कभी कठोर न हो इसका ध्यान रखती हूँ। किसी के भी दोषपर दृष्टि नहीं डालती।'

'मैं असभ्यतापूर्वक नहीं खड़ी होती। बुरे स्थान पर नहीं बैठती। पतियों के सम्मुख असज्जित नहीं जाती। उनके अभिप्रायपूर्ण संकेतों का अनुसरण करती हूँ। देवता, गन्धर्व, मनुष्य कोई हो भन-रूप-यौवन-ऐश्वर्य में कितना भी श्रेष्ठ हो, मेरा मन पाण्डवों के अतिरिक्त किसी और की ओर नहीं जाता।'

'पतियों को भोजन कराये बिना मैंने कभी भोजन नहीं किया। उनके बैठे बिना नहीं बैठती। जब-जब वे घर में आते हैं मैं उठकर खड़ी हो जाती हूँ। आसन तथा जल देकर उनका सत्कार करती हूँ। यहाँ वन में तथा राजभवन में भी बर्तनों की स्वच्छता पर मेरा ध्यान रहता है। रसोई सुस्वादु बनाती हूँ और स्वयं परसकर भोजन कराती हूँ।'

'घर को स्वच्छ रखती हूँ। गुप्त रूप से अन्न का और कुछ धन का भी संचय रखती हूँ। पति को प्रयोजन हो तो उसे देने में संकोच नहीं करती। किसी का तिरस्कार नहीं करती। कुलटा स्त्रियों से, पति के शत्रुओं से और जो उन्हें अप्रिय हैं, उनसे दूर रहती हूँ।'

'द्वार में बारबार जाकर खड़ी नहीं होती। खुले स्थान पर या कूड़ा डालने के स्थान पर कभी भी देर तक नहीं रुकती।

'पति जब कार्यवश कहीं चले जाते हैं कई दिनों को तो आभूषण, चन्दन, अंगराग, पुष्प त्याग कर नियम एवं व्रतों का पालन करती हूँ। पतियों को छोड़कर रहना मुझे सर्वथा पसन्द नहीं। वे जो नहीं खाते, पीते या जिन वस्तुओं का सेवन नहीं करते उनसे मैं भी दूर रहती हूँ।'

'मेरी महनीया सासजी ने मुझे जो भी अपने कुटुम्ब तथा कुल के आचार बतलाए हैं उन सबका सावधानी से पालन करती हूँ। भिक्षा देना, पूजन, श्राद्ध, पर्वो पर पकवान बनाना, माननीयों का सत्कार, सेवकों की देखभाल आदि सब सदा सावधानी से करती हूँ।'

'पतियों से बढ़कर सुख-सुविधा, उनसे उत्तम भोजन मैंने कभी स्वीकार नहीं किया। सासजी से, सौतों से तथा किसी गुरुजन से मैं कभी विवाद नहीं करती। मैं अपनी वीरमाता सत्यवादिनी सास की सेवा में प्रमाद नहीं करती। वस्त्र, आभूषण, भोजन में उनसे कभी विशेषता नहीं रखती।'

'पतियों से पहिले प्रातः उठत्ती हूँ। उनके विश्राम के पश्चात् सोती हूँ। बड़ों की सेवा में संलग्न रहती हूँ।'

'पहिले महाराज युधिष्ठिर नित्य बहुत अधिक ब्राह्मणों को स्वर्ण-पात्रों में भोजन कराते थे। सहस्त्रों गृहस्थ स्नातकों का भरण-पोषण करते थे। इनके राज-सदन में सहस्त्रों सेवक तथा सेविकाएँ थीं। मैं सबके नाम, रूप, गुण, कार्य तथा भोजन वस्त्रादि का पता रखती थी यह भी जानकारी रखती थी कि कौन किस काम में लगा है। क्या काम उसने कर लिया और क्या नहीं किया।'

'मैं राजसदन के वस्त्र, पात्र, सामग्री, कोष को तो सम्हालती ही थी, गजशाला, अश्वशाला तथा गोशाला के पशुओं की गणना रखती थी। उनका प्रबन्ध करती थी। उनके सेवकों की आवश्यकताएँ सुनती और उसकी व्यवस्था करती थी।'

'आय-व्यय का विवरण भी मेरे पास ही रहता था। परिवार का पूरा भार मुझ पर छोड़कर मेरे पति पूजा-पाठ तथा आगतों का सत्कार ही करते थे। मैं सब सुख छोड़कर, भूख-प्यास सहकर अपने धर्मात्मा पत्नियों की रात-दिन सेवा करती थी।'

सत्यभामा ने यह सुनकर कहा- 'सखि! मुझे क्षमा करो। मैंने जान-बूझकर तुमसे परिहास किया था।'

द्रौपदी ने कहा- 'सखि! पति को वश में करने का उपाय बतलाती हूँ। सुख के द्वारा सुख नहीं मिलता। सुख पाने के लिए दुःख और श्रम करना पड़ता है। अतः अपने सुख अपनी सुविधा, अपने सम्मान को भूलकर सदा प्रेम, परिचर्या, सौहार्द तथा कुशलता से अपने स्वामी की सेवा करो।'

'पति के आगमन की आहट मिलते ही उनके स्वागत के लिए आंगन में खड़ी रहो और आने पर आसन, जल देकर स्वयं उनका सत्कार करो। दासी को किसी काम की आज्ञा दें तो उसे स्वयं करो।'

'पति कोई बात कहें और उसे गुप्त रखना चाहें तो उसे किसी से मत कहो। जो उनके मित्र हितैषी, प्रिय हैं उनको उत्तम भोजन, वस्त्र आदि देकर प्रसन्न रखो और पति के शत्रु, उपेक्षणीय, अहित चिन्तकों से सदा दूर रहो।'

'अपने तथा सोतों के भी वयस्क पुत्रों के साथ एकान्त में मत बैठो। कुलीन, निर्दोष सम्मानिता स्त्रियों के साथ ही मैत्री रखो। दुष्टा, निन्दिता चंचल स्वभाव की और ओछी स्त्रियों से दूर रहो।'

यह सम्वाद चलता ही रहता। दो महान महिलाएँ मिली थीं बहुत दिनों पर और उनमें आन्तरिक सौहार्द्र था। उनकी परस्पर चर्चा भला क्यों समाप्त होती किन्तु सत्यभामा को उनके स्वामी ने बुलाया। वे श्री द्वारिकाधीश अब मार्कण्डेय जी तथा पाण्डवों से विदा होकर द्वारिका जाने के लिए उठ चुके थे।

सत्यभामा ने द्रौपदी को हृदय से लगाया और आश्वासन दिया- 'सखि! चिन्ता छोड़ दो। रात्रि भर जागते रहना बन्द कर दो। तुम्हारे देवतुल्य पति अवश्य अपना खोया राज्य फिर प्राप्त कर लेंगे।'

सत्यभामा ने बतलाया कि द्वारिका में द्रौपदी के पुत्रों को सुभद्रा अपने पुत्रों के समान ही स्नेह करती हैं। महारानी रुक्मिणी तथा सभी श्रीकृष्ण की पत्नियों का उन बालकों पर वात्सल्य है। वे प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुत-कर्मा, शतानीक और श्रुतसेन सभी शस्त्रविद्या में निपुण हैं।

सत्यभामा ने द्रौपदी की परिक्रमा की। उनकी वन्दना करके रथ पर बैठीं। श्री कृष्णचन्द्र उनके साथ द्वारिका के लिए विदा हुए।

– संकलित

पृष्ठ 5 का शेष.........................**चलता रहे मेरा संघ**

आएँगे और कौम को मार्ग पर ले आएँगे। या राम आएँगे और सबको मार्ग दिखाएँगे। हम स्वयं महाराणा प्रताप बनेंगे, उसी मार्ग पर चलेंगे। हम स्वयं प्रभु राम के जीवन से बनने वाली राह पर चलेंगे। ऐसा यदि हम सोचें तो एक व्यक्ति का संकल्प अनेकों प्रताप पैदा कर सकता है। पर आवश्यक यह है कि अभी इसी क्षण मैं जाग जाऊँ। जो जाग कर प्रयास करता है वह संस्कारित हो जाता है। पर जो जाग कर सो जाता है, जागता है और फिर सो जाता है, उससे कोई घटना नहीं घट सकती। इसलिए चाहे कोई भी हो, उसे श्रेष्ठ मार्ग पर चलना है तो मानसिक रूप से सदैव जाग्रत रहकर निरन्तर बढते रहना होगा। सतत् अभ्यास और निरन्तर अभ्यास से ही संस्कार बनते हैं। इसीलिए श्री क्षत्रिय युवक संघ जागरूक बनाकर निरन्तर अभ्यास का मार्ग देता है। उस निरन्तर अभ्यास में अपने आपको सम्मिलित करें यही हमारे श्रेष्ठ आचरण की आधार भूमि बन जाएगी। यही विनम्र आग्रह लेकर आए हैं कि इस प्रणाली से जुड़ें। श्री क्षत्रिय युवक संघ का मार्ग अपनाएँ।

●

कुँवर राजसिंह मेड़तिया

(तीर्थगुरु पुष्करराज रक्षार्थ धर्मयुद्ध)

– वीरेन्द्रसिंह तलावदा

जोधपुर के संस्थापक राय जोधाजी के पुत्र दूदाजी का जन्म राणी सोनगरी चापा (पाली के चौहान सोनगरा खीमा सतावत की पुत्री थी) की कोख से बुधवार, जून 15 सन् 1440 ई (आषाढ़ सुदि 15 वि सं. 1497) को हुआ, राव दूदाजी ने ई. सं. 1489 में मेड़ता पर शासन स्थापित किया था। आगे चलकर इनके वंशज मेड़तिया राठौडों के नाम से विख्यात हुए।

राव दूदाजी के पुत्र राय वीरमदेव जी थे। इनके पुत्र राव जयमल जी जिन्होंने बादशाह अकबर के विरुद्ध 1568 ई. में चित्तोड़ दुर्ग के तीसरे शाके में वीरगति प्राप्त की थी, इन्हीं राव जयमलजी के चौथे पुत्र माधवदासजी हुए थे, इनकी माता केवल कुवरी लूणावाडा के राणा रणधीरसिंहजी की पुत्री थी।

माधवदासजी को रियां की जागीर मिली थी। ये मुगलों से लड़ते हुए वि. सं. 1656 (ई. सं. 1599) में काम आये। इनके स्वर्गवास के पश्चात् स्मारक रीयां में कल्याणसागर तालाब के किनारे पर बना हुआ है। इन्हीं माधवदासजी के वंशज माधवदासोत मेड़तिया राठौड़ कहलाये। माधवदासजी के पुत्र सुन्दरदासजी, सुन्दरदासजी के पुत्र गोपालदासजी (गोयंददास जी) हुए। गोयंददास जी के पुत्र ठा. प्रतापसिंहजी रियां के शासक बने। ठा. प्रतापसिंहजी के पुत्र कुँ. राजसिंहजी हुए। इनके वंशजों को आलणियावास की जागीरी प्राप्त हुई।

बादशाह औरंगजेब का राजपूतों के साथ यह युद्ध का समय था। जमरूद के थाने पर औरंगजेब ने विष देकर जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंहजी को वि. सं. 1735 पौष वदि 10 (28 नवम्बर, 1678 ई.) को मरवा दिया था और जोधपुर (मारवाड़) पर अपनी सेना भेजकर उसने अधिकार कर लिया। बालक महाराज अजीतसिंहजी को वीरवर दुर्गादास जी आदि स्वामीभक्त सरदारों की संरक्षता में सुरक्षित करके राठौड़ सरदारों ने मुगलों के थानों पर आक्रमण शुरू कर दिए थे। जोधपुर, सोजत, डीडवाना, सिवाना आदि शाही थाने लूट लिए गए थे।

शाही आज्ञानुसार मारवाड़ में जब मुगल सैनिकों द्वारा मंदिर, देवालय आदि ध्वस्त किये जाने लगे तव कुँ. राजसिंहजी ने अन्न का परित्याग करने के साथ-साथ पलंग पर सोना भी छोड़ दिया। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मारवाड़ में स्थित, सब मस्जिदें तोड़कर मुगलों का नाश नहीं कर दूंगा तब तक सिर्फ दूध का सेवन कर धरती पर ही लेटूंगा।

अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने हेतु कुँ. राजसिंहजी ने अपने पिता ठा. प्रतापसिंहजी गोपालदासोत और बाघसिंहजी चांदावत, जयसिंहजी चांपावत आदि मेड़तियों के साथ मेड़ता पहुँचें। यहाँ फौजदार सादुल खाँ से युद्ध कर उसे अपना बंदी बना लिया। अगस्त, 1679 ई. (भाद्रपद वि. सं. 1736) में मेड़ता पर अधिकार कर लिया इसलिये मारवाड़ में उनके लिए यह कहा है कि ''राजड़ जिसौ नहीं राठौड़'' बाद में सभी मेड़तिया राठौड़ मेड़ता से आलणियावास पहुँच गये। इसके कुछ समय पश्चात् कुँ. राजसिंहजी का विवाह हुआ। विवाह करके वे अपने ठिकाने में लौट आये।

विक्रमी संवत् 1737 के भाद्रपद मास की कृष्ण सप्तमी का दोपहर ढल चुका था। बादलों की शीतल छाया के नीचे आलणियावास की नदी में कुँवर राजसिंहजी सिर पर मोड़ बाँधे दूल्हा के वेश में घोड़ी पर सवार होकर देवपूजन को जा रहे थे। पीछे दो रथ थे, जिनमें से एक में

दुल्हन और उसकी सहेलियाँ बैठी थी। दूसरे रथ में अन्य स्त्रियाँ बैठी माँगलिक गायन गा रही थी। आगे कलावन्त सारंग राग अलाप रहा था। माँगलिक ढोल बज रहे थे। सारे आलणियावास गाँव पर विवाहोत्सव और माँगलिक अनुष्ठानों की बहार-सी छाई हुई थी।

ठीक इसी समय हाँफते हुए घोड़े पर एक सवार अजमेर की ओर से आया। उसने आगे बढ़कर कुँवर राजसिंहजी से कुछ कहा। थोड़ी देर तक उन दोनों में परस्पर वार्तालाप होती रही। कुछ ही क्षणों पश्चात् माँगलिक गायन बन्द हो गए। ढोलियों ने ढोल की ताल को बदल दिया। कलावन्त की राग का सुर भी बदल गया।

ठाकुर प्रतापसिंहजी गढ़ में एक बुर्ज पर चढ़कर वर्षा की सम्भावना पर विचार कर रहे थे। सहसा उन्होंने ढोल की बदली हुई ताल और कलावन्त के बदले हुए सुर को सुना। उन्होंने मन ही मन कहा- ''हैं, यह क्या?'' उन्होंने फिर सावधानीपूर्वक कान लगाया। बात सच थी। विवाह के माँगलिक ढोल के स्थान पर अब मारु ढोल बज रहा था। कलावन्त की सिन्धु राग उनके कानो में स्पष्ट आ रही थी।

''यह क्या उपद्रव हो गया? यह क्या रहस्य है? रंग में यह भंग कैसा?'' उन्होंने अपने आप से यह प्रश्न पूछ डाले। उन्हें कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। उन्होंने ज्यों ही दरवाजे की ओर देखा कुँवर आनन्दसिंह घोड़े को सरपट दौड़ाते हुए आते दिखाई दिए।

कुँ. आनन्दसिंह घोड़े पर से उतरे ही नहीं थे कि उन्होने आतुरतावश पूछ लिया ''आनन्द! यह क्या बात है, विवाह के देव-पूजन के शुभ अवसर पर इस मारू ढोल और सिन्धु राग का क्या प्रयोजन?'' कुँ. आनन्दसिंह ने घोड़े पर चढ़े-चढ़े ही उत्तर दिया-''अजमेर का फौजदार तहब्बर खाँ मेड़ता की पराजय का बदला लेने के लिए एक बड़ी सेना के साथ पुष्कर आ ठहरा है। कल कृष्ण जन्माष्टमी के दिन वह पुष्कर के पवित्र घाटों पर एक सौ गायों की कुर्बानी देगा। भगवान वाराहजी के मन्दिर को ध्वस करेगा तथा ब्राह्मणों का कत्लेआम करेगा।'' ठाकुर प्रतापसिंहजी के मुँह से इतना ही निकला- ''हैं, तब तो बड़ा अन्याय होगा'' और दूसरे ही क्षण वे गहरी विचार तन्द्रा में निमग्न हो गए।

उस समय मेड़ता अजमेर के सूबे में था। जब फौजदार तहब्बर खाँ के पास मेड़ता की दुर्दशा का संवाद पहुँचा, तब वह आग-बबूला हो गया। उसी समय बादशाह औरंगजेब की हिन्दू मन्दिरों को तोड़ने की नीति भी समस्त भारतवर्ष में दृढ़ता के साथ क्रियान्वित की जा रही थी। तहब्वर खाँ इस अवसर से दोहरा लाभ उठाना चाहता था। वह कृष्ण जन्माष्टमी के दिन पुष्कर के घाटों पर गायों की कुर्बानी कर तथा वाराहजी के मन्दिर को तोड़ कर पुण्यलाभ भी करना चाहता था और वहाँ से आगे बढ़कर उद्दण्ड राठौड़ों को दण्ड देता हुआ मेड़ता पर पुन अधिकार करना चाहता था। इसीलिये एक सौ गायों को साथ लेकर कृष्ण जन्माष्टमी से दो दिन पहले ही एक बड़ी सेना सहित पुष्कर में आकर ठहर गया।

जन्माष्टमी के दो दिन पहले पवित्र धाम पुष्करराज पर मृत्यु की काली छाया पड़ चुकी थी। यह कालान्तर में और भी घनीभूत होकर मृत्यु के महाभयावने स्वरूप का प्रत्यक्ष सृजन करने में सफल हो रही थी। इस प्रत्यक्ष प्रलय से चारों ओर मृत्यु के पहले की निराशा, विवशता और भयंकरता दिखाई दे रही थी। लोग भयातुर हो अपने-अपने घर छोड़ कर भाग रहे थे।

समस्त तीर्थों के गुरु पुष्करराज ने निराशापूर्ण नि:श्वास छोड़ते हुए कदाचित् सोचा होगा- ''समस्त पापों के क्षय की कामना लेकर यहाँ स्नान करने वाले करोड़ों मनुष्यों में से पवित्रता को बचाने वाला क्या एक भी नहीं है?'' गौभक्त भगवान् कृष्ण के जन्म-दिवस पर कुर्बानी की प्रतिक्षा में गायों के भर्राये हुए, असहाय कण्ठों से क्या यह मूक आर्तनाद नहीं निकला होगा- ''दिलीप और कृष्ण की संतानों में से कोई शेष रहा हो तो आओ और इस समय रक्षा करो।''

भगवान वाराहजी ने क्या इसी दिन को अपने सच्चे भक्तों की परीक्षा का दिन नहीं चुना होगा। ब्राह्मणों ने ठीक इसी समय भगवान को अपने इन वचनों का स्मरण अवश्य दिलाया होगा। ''परित्राणाय साधुनाम।''

और ठीक ये ही बातें एक घुड़सवार थोड़े समय पहले मेड़तिया राजसिंहजी को कह चुका था। क्षण प्रतिक्षण सिन्धु राग की ध्वनि तीव्र और घनीभूत हो रही थी। इतने में कुँवर आनन्दसिंह ने वापिस आकर कहा– ''दादाभाई, पिताजी ने कहलाया है कि पहले देवता–पूजन कर लीजिए और फिर इस विषय में सब मिलकर सोचेंगे।'' ''वास्तव में मैं देव–पूजन को ही जा रहा हूँ आनन्द! तुम भी साथ आ जाओ। तीर्थराज पुष्कर जैसे पुण्य स्थल में जन्माष्टमी से पवित्र पर्व पर गौ–माता की प्राण रक्षा, भगवान वाराहजी के मन्दिर की प्रतिष्ठा–रक्षा, ब्राह्मणों की भय से मुक्ति और साथ के साथ स्वामी का बदला लेने का दुर्लभ अवसर अति भाग्यवान क्षत्रिय के अतिरिक्त किसी को भी प्राप्त नहीं हो सकता, आनन्द!''

''किन्तु एक बार गढ़ में तो चलिए।'' ''गढ़ में अवश्य चलता पर केसरिया कर लिया है, इसलिए लौटकर जाना पाप है।'' ''यह केसरिया तो विवाह के निमित्त है, न कि युद्ध के निमित्त।'' ''मैंने अब संकल्प द्वारा इन्हें युद्ध के निमित्त ही मान लिया है।''

आनन्दसिंह ने ये बातें आकर अपने पिता से कह दी। पिता ने सगर्व कहा– ''कोई बात नहीं यदि उसकी ऐसी इच्छा है तो तुम, चतरसिंह और रूपसिंह भी उसके साथ चले जाओ।''

थोडी देर में तीनों भाई और गढ़ के अन्य बचे–कुचे लोग भी पुष्करराज की ओर प्रयाण कर गये। मार्ग में उन्हें लौटते हुए जनाना रथ मिले। अब उनमें विवाह के माँगलिक गायनों के स्थान पर समर–प्रयाण के समय के माँगलिक गायन गाए जा रहे थे। पहले दुल्हिन लज्जावश चुप थी, पर अब वह उल्लासपूर्ण ढंग से इन गायनों में स्वयं सहयोग दे रही थी।

जिस समय प्राची के पर्दे में से सप्तमी का चन्द्रमा मुँह निकाल कर झाँकने लगा था। ठीक उसी समय 50–60 घुड़सवार भगवान वाराहजी के मन्दिर के सामने जाकर उतर पड़े, थोड़ी देर विश्राम कर लेने के उपरान्त वे फिर घोड़ों पर सवार हुए और पुष्कर के पूर्वी घाटों पर विश्राम करती हुई शाही सेना पर उसी समय टूट पड़े। बात की बात में उन्होंने सैकड़ों मुसलमानों को तलवार के घाट उतार दिया और सब गायों को बन्धन मुक्त कर दिया। इस अचानक आक्रमण से चोट खाकर अब शाही सेना भी सावधान हो चुकी थी। उसने भी चाँदनी के खुले प्रकाश में प्रत्याक्रमण कर दिया। दोनों ओर से भयंकर मारकाट होने लगी। रात्रि की निस्तब्धता को चीर कर पुष्कर की सूनी गलियों से टकराती हुई 'जय वाराह', 'जय पुष्करराज', 'अल्लाहो अकबर' की ध्वनि, प्रतिध्वनि ने आस–पास के समस्त गाँवों को सजग और सतर्क कर दिया था। सप्तमी की सारी रात और अष्टमी के सारे दिन यह युद्ध होता रहा। पुष्कर की समस्त गलियाँ रक्त के कीचड़ से सन चुकी थी। दोनों ओर लाशों के ढेर लगने लगे। अष्टमी का सूर्य पश्चिमी क्षितिज में ज्यों ही गोता लगाने की तैयारी कर रहा था, त्यों ही पश्चिमी क्षितिज पर से धूलिका का एक बादल–सा उठता हुआ दिखाई पड़ा। सैकड़ों कण्ठों से एक साथ निकल रहा था– ''रण बंका राठौड़।''

वाराहजी के मन्दिर के दरवाजे से घोड़ा लगाकर लड़ते हुए कुं. राजसिंहजी से एक सवार ने आकर कहा– ''सावधान! ठा. प्रतापसिंहजी रियां, कुँवर केशरीसिंहजी रियां, ठाकुर गोकुलसिंहजी बाजोली, ठाकुर हठीसिंहजी, जगतसिंहजी, सुजाणसिंहजी आदि अपनी–अपनी सेनाओं को लेकर आ पहुँचे हैं।'' इतने में और भी समीप आती हुई ध्वनि सुनाई दी– ''रण बंका राठौड़।'' राजसिंहजी ने खीसककर आँखों पर आए हुए मोड़ को ऊपर खींचते हुए प्रत्युत्तर दिया– ''रण बंका राठौड़।'' और दूसरे ही क्षण ये घोड़ा कुदा कर शाही सेना के मध्य में जा पहुँचे।

जब कुँवर केशरीसिंहजी रियां और अन्य सरदार युद्ध

स्थल पहुँचे तब उन्होंने देखा कि एक बिना सिर का दूल्हा-योद्धा शाही सेना से घिरा हुआ दोनों हाथों से तलवार चला रहा था। फिर एक भयंकर उद्घोष हुआ- ''रण बंका राठौड़!'' प्रत्युत्तर आया- ''अल्ला-हो-अकबर'' और खचाखच-सपासप तलवारें चलने लग गई। उस रात्रि को भी भयंकर मारकाट होती रही। भगवान कृष्ण के जन्म महोत्सव को तलवारों की खनखनाहट के बीच युद्ध-घोषों की वीरोचित ध्वनि के द्वारा मनाया गया। नवमी के दिन भी पुष्कर की प्रत्येक गली में इसी प्रकार घर-घर के सामने युद्ध होता रहा। समस्त गलियाँ लाशों से भर गई। पुष्कर राज की पवित्र भूमि रक्त से रंजित होकर और भी पवित्र होती गई। (कुँ. राजसिंहजी 19 अगस्त, 1679 ई. को युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुये।)

नवमी की संध्या को एक घुड़सवार अलसाई हुई चाल से आलणियावास की ओर जा रहा था। वह मार्ग में पूछने वालों को उत्तर दे रहा था- ''कुँवर राजसिंहजी रीयां (इनके पुत्रों को आलणियावास ठिकाना मिला), आनन्दसिंहजी, चतुरसिंहजी, रूपसिंहजी (राजसिंहजी के भाई, इनका वंश चांनणी ठिकाने से है), रियां के कुँवर केशरीसिंहजी, बाजोली जांटा के ठाकुर गोकुलदासजी तथा हठीसिंहजी (ठि. नैणिया), जगतसिंहजी (ठि. गोठडा), सुजाणसिंहजी, किशनसिंहजी (चांदावत मेड़तिया ठि. दुदड़ास), सूजा हरिसिंहोत, सुन्दरसण आदि मेड़तिया एवं ऊदावत हिम्मतसिंहजी, जगतसिंहजी, भोजराजसिंहजी व जोगीदासजी जैसे सैकड़ों वीर राजपूत सरदार वीरगति को प्राप्त हो गए हैं। और थोड़ा-सा रुक कर वह फिर कहता था- ''तहब्वर खाँ की सब सेना मारी गई है और वह भाग कर तारागढ़ पर चढ़ गया है।''

पुष्कर के आसपास मारवाड़/अजमेर क्षेत्र के सभी राजपूत वंशों के सिरदारों ने युद्ध में भाग लिया। आज भी कुँ. राजसिंहजी की समाधि पुष्कर में बनी हुई है, पुष्कर में पाण्डे की नर्सरी के पास इन वीरों की स्मृति में चबूतरा (स्मृति स्थल) बना हुआ है, यहाँ पर जन्माष्टमी पर्व पर शहीद वीरों को याद कर आमजन व इनके वंशज उन्हें श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं। गायों की रक्षार्थ युद्ध की स्मृति में गऊ घाट पर गाय की मूर्ति स्थापित है, जो इस स्मृति को आज भी जिन्दा रखे हुए है।

माधवदासोत मेड़तिया के प्रमुख ठिकाने :- रीयां, आलणियावास, बुटाटी, ईडवा, चांदारुण, मेड़ास, बीजाथल, बिखरणीया, धोलेराव, पोलास, बोजोली जाटां, नैणिया, गोठड़ो, चानणी बड़ी, सूरियास, भेंसड़ावड़ा, कीतलसर, भाड़ली, कीरड़, कवाल, चूई, वरसण और लंगोड़।

इतिहास का गुणगान हमें प्रेरणा देता है, हम में जोश भरता है, नई पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त करता है, गर्व से शीश उठाकर चलने की हिम्मत देता है। वीर पुरुषों के गौरवपूर्ण आदर्श चरित्रों से मनुष्य जाति एवं राष्ट्रों में एक संजीवनी शक्ति का संचार होता है। इसलिये प्रत्येक देश अपने वीर पूर्वजों के चरित लिखकर उनका सम्मान करता है।

पृष्ठ 4 का शेष........................**समाचार संक्षेप**

की गई। फाउण्डेशन की सूचना-प्रौद्योगिकी ईकाई की दो दिवसीय कार्यशाला उदयपुर में आयोजित की गई। E.W.S. प्रमाण-पत्र जागरुकता के लिए फाउण्डेशन ने सांवलोदा (सीकर) चांधन व बडोड़ा गाँव तथा लाडनूं में एक दिवसीय शिविर लगाये।

- **अन्य समाचार-** 13 अप्रेल, 2025 गाजियाबाद में विक्रमादित्य जयन्ती एवं नव वर्ष समारोह मनाया गया। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के नायक बाबू वीर कुँवर सिंह (बिहार) की जयन्ती को शौर्य दिवस के रूप में मनाया। इसी उपलक्ष्य में 23 अप्रेल को पटना में एयर शो का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में वक्ताओं ने कुँवर सिंह के अदम्य साहस, वीरता, धर्म परायणता एवं राष्ट्र भक्ति की प्रशंसा की।

सत्तर खान-बहत्तर उमराव

– युधिष्ठिर

गुण रक्त में होते हैं। जहाँ दूसरे धर्म के व्यक्ति की रक्षा के लिए जान की बाजी लगा दी। जहाँ पुष्पों से भी कोमल अपनी प्रियतमा को जान-बूझकर अग्नि के हवाले कर दिया। जो महज एक उपाधि नहीं कर्मगत रक्त-रंजित इतिहास था। मानवता की रक्षा के लिए अपनी अजर-अमर शान को प्रत्यक्ष प्रकट कर दिया। कलेजे फट जाने वाले कारनामे जो हँसी-हँसी कर देते थे। जो मरना सिर्फ इसलिए चाहते हैं कि वो हमेशा जीवित रह सके। इसी रक्त की शुद्धता की वजह से ही ईश्वर यहाँ दूत बनकर प्रकट होते हैं।

शाहजहाँ का दरबार लगा हुआ था। गगनभेदी जयकारों से पूरा दरबार गूंज उठा- ''सत्तर खान, बहत्तर उमराव हाजिर है।'' इस शोर में कुछ शंका ने जन्म लिया। शाहजहाँ के ललाट पर तनाव की रेखायें उभर आई। भृकुटि मध्य से थोड़ी ऊपर उठी और शाहजहाँ बोल उठा-

''जब संख्या में खान और उमराव बराबर हैं तो राजपूतों को दो ताजीमें अधिक क्यों दी जाती है?''

दरबार में सन्नाटा छा गया। किसी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। किसी के बोलने की हिम्मत नहीं हुई। सब एक दूसरे का चेहरा देख रहे थे। अचानक किसी की आवाज ने सन्नाटा तोड़ा-

''राजपूतों में दो विशिष्ट गुण अधिक होते हैं जो मुसलमानों में नहीं इसलिए यह सम्मानसूचक उद्घोष दरबार में किया जाता है।''

शाहजहाँ का चेहरा क्रोध से लाल हो गया।

''ऐसा क्या है राजपूतों में जो हमारे में नहीं?''

पठान बोला-

''हुजूर! राजपूतों में सिर कटने के बाद धड़ लड़ता है और पति के मरणोपरान्त पत्नी जीवित अग्नि में प्रवेश कर लेती है।''

''अगर ऐसा है तो दरबार में साबित करके दिखाओ नहीं तो तुम्हारा सर कलम कर दिया जावेगा।''

''हुजूर! मुझे छः महिने की मोहलत चाहिए।''

मोहलत तो मिल गई लेकिन अब प्रश्न था इसे साबित कैसे करें? अपनी मौत को अपने सिर पर देखकर पठान अरबी घोड़े पर बैठकर निकल पड़ा। वह आगरा से निकला, हांसी-हिसार होते हुए मारवाड़ के महाराजा जसवंतसिंहजी के पास आ पहुँचा। जसवंतसिंहजी ने उसे शरण दी। और दोनों शर्तों को दरबार में पूरी करने का आश्वासन दिया।

अगले दिन दरबार में बात उठी कौन सिर कटने के बाद कबन्ध युद्ध करेगा। तोगाजी राठौड़ ने हाँ कर दी। अब चिंता थी अग्नि स्नान की क्योंकि वो तो कुंआरे थे। पत्नी के बिना दूसरी शर्त पूरी कौन करे।

इस उलझन को मिटाया जाखण के भाटी सरदार ने।

''मैं अपनी बेटी को तोगाजी को ब्याह दूंगा उसे भी वीर पुरुष ही वरण करना है।''

विवाह हुआ 2-3 महिने नव-दम्पत्ति को समय दिया गया। फिर परीक्षा की घड़ी उपस्थित हुई। महाराजा, तोगाजी, तोगाजी की धर्मपत्नी को लेकर आगरा पहुँचे। फिर निश्चित दिन पर, निश्चित स्थान पर दरबार उपस्थित हुआ। सब लोग आयोजन को देख रहे थे।

धधकते अंगारे भी जिसको जला न सके। भयभीत करने आए शत्रुओं के पसीने छूट गए। लाशों के ढेर लग गए। शताब्दियों तक जो न देखा वह मंजर सामने था। ऐसे डरावने दृश्य ने शाहजहाँ को तख्त से उठा दिया। वह डर कर जनानी ड्योढ़ी में भाग खड़ा हुआ। उसने जो कल्पना नहीं की थी वह दृश्य सामने था। क्रोधाग्नि भभक गई। सिर कटने के बाद भी धड़ लड़ रहा था। चेतना शून्य हुए शहंशाह को तब शान्ति मिली जब तोगाजी के धड़ पर नील के छींटे डालकर उन्हें शान्त किया गया। तत्पश्चात् उनकी पत्नी ने भी अग्नि में प्रवेश कर लिया। दोनों का पुनर्मिलन हो गया। सभासद शान्त हो गए क्योंकि इस उद्घोष ने उसकी जगह ले ली-

''सत्तर खान, बहत्तर उमराव हाजिर हैं।''

●

अजयमेरू संस्थापक चक्रवर्ती महाराजा राजऋषि अजयपाल चौहान–विश्व इतिहास के पहले ज्ञात झुंझार

– दयालसिंह सिलारी

उत्तर पश्चिमी भारतवर्ष व सांभर–अजयमेरु (अजमेर) क्षेत्र पर लंबे समय तक चक्रवर्ती चौहान (चाहमान) राजवंश का शासन रहा। चाहमान या चहुआंण वंश को वर्तमान में इतिहासकार व लोग चौहान नाम बोलते व लिखते हैं। इस चक्रवर्ती चाहमान राजवंश में कई सूरमाओं और संतों ने जन्म लिया है, जैसे गोगाजी, पीपाजी, मामोजी, तेजाजी, हर्ष व जीण माता व एक से बढकर एक सूरमा हुए जैसे चाहमान, सामंतराज, वाकपतिराज, सिंहराज, दुर्लभराज, विग्रहराज, लाखण, हम्मीर, अनहिलराज, केल्हन, कान्हड़देव, वीरमदेव, सुरत्राण, सुरजन आदि। इसी चाहमान वंश में सूरमा व संत दोनों गुणों के साथ 7वीं शताब्दी में जन्मे चक्रवर्ती महाराजा अजयपाल चहुआंण या अजयराज प्रथम जिन्होंने अपने नाम पर राजस्थान के हृदय स्थल अजयमेरु को बसवाया था, जो कालांतर में अजमेर नाम से जाना जाने लगा। महाराजा अजयपाल चक्रवर्ती चाहमान साम्राज्य के प्रमुख योद्धा व चक्रवर्ती महाराजा थे। कई इतिहास की पुस्तकों व लोगो में यह भ्रम है कि अजमेर की स्थापना 1113 ईस्वी में हुई थी जबकि अजमेर की स्थापना महाराजा अजयपाल द्वारा 7वीं शताब्दी में ही कर दी गई थी। 1113 ई. में महाराजा अजयराज द्वितीय द्वारा सांभर की जगह चौहान साम्राज्य की राजधानी अजमेर में स्थानांतरित की गई थी। अजमेर से 10 किमी की दूरी पर स्थित अजयसर गांव हिंदुओं की आस्था और श्रद्धा का केन्द्र है। इतिहासविद् श्री शिव शर्मा के अनुसार विख्यात पत्रिका कल्याण (सन् 1967 ई.) में पृ. 387 पर उल्लेख मिलता है कि पुष्कर में सृष्टि यज्ञ के समय प्रजापति ब्रह्माजी ने भगवान शिव की कृपा प्राप्त करने के लिए चार शिवलिंग स्थापित किए थे। उनमें से एक अजोगंध महादेव शिवलिंग को यहाँ अजयसर में प्रतिष्ठित किया था। इसी से यहां पास में अजयसर गाँव बसा।

ऐतिहासिक मान्यतानुसार सन् 668 ई. में अजयमेरु के महाराजा अजयपाल चौहान ने अजमेर नगर बसाया था और अजमेर में गढ़ बिठली या तारागढ़ दुर्ग बनवाया था। वह चाहमान वंश की शाकंभर शाखा के संस्थापक वासुदेव चाहमान के पड़पौत्र थे। अपने जीवनकाल में अजयपालदेवजी ने अपने पूर्वजों के साम्राज्य के अलावा मालवा, कच्छ, काठियावाड के भू–भाग में शासन व्यवस्था के तहत किए गए विशेष अभियान में अच्छी भूमिका निभाई तथा मलेच्छों का संहार कर उनके सहयोगियों का दमन किया व अनेक युद्धों में उनको परास्त कर भगाया। साथ ही साथ अपने वंश की राज व न्याय व्यवस्था लागू करने में महत्ती भूमिका निभाई। चाहमान कुल के चक्रवर्ती साम्राज्य के सांभर नरेश अजयपाल चौहान को अंजार धणी भी कह सकते हैं क्योंकि अपने जीवनकाल में उन्होंने कई वर्ष तक अंजार क्षेत्र को भी संभाला था। चक्रवर्ती महाराजा अजयपाल चौहान की वंशबेल में आगे चलकर दुर्लभराज, 3 गोविंदराज, 4 विग्रहराज हुए, 2 चंद्रराज, अजयराज, अर्णोराज, सोमेश्वर, 3 पृथ्वीराज सहित कई सारे नाम आते हैं। एक नाम के कई कई शूरवीर राजा, सम्राट भिन्न भिन्न समयकाल में सांभर, अजमेर व दिल्ली के शासक रहे तथा अपने राज्य की राजधानी अजयमेरु के अंतर्गत दिल्ली को अपने राज्य का एक सूबा (जिला) बना दिया था और अपना सामंत दिल्ली में बिठा दिया था। अजमेर के बीच झील और पहाड़ियों से घिरा यह शहर उस काल में भी हर किसी को रोमांचित कर देने वाला था जहां ऊँची पहाड़ी पर बना सुदृढ़ तारागढ़ दुर्ग चौहान वंश के यश का बखान करता था। इस तरह की भव्यता और

सुन्दरता होते हुए भी किसी का मन राज-काज व मोह माया से उठकर भगवान की भक्ति में लग जाए, यह एक सच्चे क्षत्रिय के लिए ही संभव है। चौहान वंश के दूसरे राजाओं की तरह महाराजा अजयपाल भी बहुत बड़े शिवभक्त थे। उन्होंने ही अजोगंध महादेव मंदिर का निर्माण अजयसर में करवाया था। सांभर नरेश अजयपाल चौहान ने अपनी वृद्धावस्था में वानप्रस्थ आश्रम अनुसार राज पाट त्यागकर सन्यास ग्रहण कर लिया और अपने जीवन की संध्या इसी स्थान पर व्यतीत की। वह तपस्या के बल पर सिद्ध योगी बन गए थे और इसीलिए उन्हें अजयपाल बाबा कहा जाने लगा। इतिहासकार डॉ. मोहनलाल गुप्ता ने अपनी पुस्तक में यहाँ महाराजा अजयपाल द्वारा शिव की तपस्या करने का उल्लेख किया है। अन्य इतिहासकारों के मतानुसार उम्र के आखिरी पड़ाव में महाराजा अजयपाल ने संन्यास धारण कर लिया और अजयसर में ही रहे। उस जमाने में क्षत्रिय (राजपूत) जब इस उम्र में घर त्याग करते तो अपना घोड़ा व तलवार साथ रखते थे और सफेद वास्त्र धारण कर एकांतवास को चले जाते थे।

अजोगंध महादेवजी का मंदिर सर्पिलाकार घुमावदार पहाड़ियों के पश्चिम में ढलान पर स्थित है। झरने के पास ठंडा व हरा-भरा यह स्थान हृदय को असीम शांति प्रदान करता है। प्राकृतिक सुंदरता के रमणीक दृश्यों के बीच विशाल एवं अत्यंत प्राचीन हरे-भरे वृक्षों की सघन छाया इस स्थान को सुरम्य और अलौकिक बनाती है। वर्षाकाल में यह स्थान स्वर्ग के समान लगता है। यहाँ पर दो सरोवर हैं और ऊपर के छोटे सरोवर का पानी झरने के रूप में गिरकर नीचे वाले सरोवर में आता है जहाँ से एक जलधारा निकल कर प्रवाहित होती रहती है। वर्षा के दिनों में झरना जब अपने पूरे वेग से बहता है तब यह दृश्य देखने योग्य होता है। ऊपर के सरोवर के पास अजयपाल बाबा का मंदिर स्थित है। इस मंदिर में अजयपाल बाबा की मूर्ति सोटा लेकर खड़ी हुई अवस्था में है।

अजोगंध महादेव या अजयपाल मंदिर के पास ही एक नाले के पास पत्थर की बनी एक विशाल घाणी (तेल का कोल्हू) नजर आती है। इस घाणी के बारे में 'अजमेर का वृहद् इतिहास' पुस्तक में डॉ. मोहनलाल गुप्ता लिखते हैं-'जब कोई विधर्मी किसी हिन्दू की पूजा-प्रार्थना में विघ्न डालता था, तो महाराजा अजयपाल उसे इस घाणी में पिसवा देते थे।'

लेखक देवीसिंह महार के अनुसार तथा जनश्रुतियों व आमजन में प्रचलित लोक कथाओं के अनुसार- सांभर नरेश अजयपालदेव जी ने उम्र के आखिरी पड़ाव में राज-काज छोड़ प्रभु भक्ति की तरफ मुँह किया व अपने जीवित रहते ही सांभर-अजमेर के राज्य का शासन अपने पुत्र विग्रहराज प्रथम को सौंप दिया तथा पुष्कर व अजमेर के बीच अजयसर नामक स्थान पर वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करते हुए तपस्या करने लग गए थे। उनके यहाँ आने से एक छोटा-सा गाँव उनके नाम पर अजयसर बस गया। पुष्कर के आस-पास उस समय अनेक उच्च कोटि के संत तपस्या करते थे। सहज रहकर ईश्वर साधना करना क्षत्रिय पद्धति है। अजयपालदेवजी भी उसी का अनुसरण करते हुए सहज रूप से रहते हुए राजभोग से दूर अजमेर की अरावली पहाड़ियों में चले गये और संतों के सान्निध्य में रहकर तपस्या में लीन रहने लगे।

इतिहास के कुछ स्रोतों व जनश्रुतियों के अनुसार एक समय जब राजऋषि अजयपालजी तपस्यारत थे तब कुछ गोपालक व चरवाहों ने रक्षार्थ पुकार लगाई कि उनके गोधन को यवन आक्रांता व उनके सहयोगी यानी स्थानीय गद्दार जो यवनों के हमले का मार्ग प्रशस्त कर रहे थे, गोधन को लूट कर ले जा रहे हैं। जब अजयराजजी चौहान को यह बात ज्ञात हुयी तो उसी समय उनके वृद्ध शरीर में फिर फुर्ती आ गयी और वह अपनी तलवार और घोड़ा लेकर गायों की रक्षार्थ निकल पड़े। लिखित इतिहास की कमी के चलते यह घटना सिर्फ जनश्रुतियों से ही ज्ञात होती है। ऐसा मानना है कि अजयपालजी ने यह विचार किया कि मृत्यु निश्चित है इसलिए यवनों के हाथों मरने से अच्छा है कि अपने आराध्य भगवान अजगंधेश्वर महादेव को अपना शीश समर्पित कर लुटेरों से युद्ध करें। ऐसा सोच

कर राजऋषि अजयपालदेव जी ने अपना शीश काटकर अजगंधेश्वर महादेव जी को समर्पित कर दिया और बिना सिर के सिर्फ धड़ के साथ घोड़े पर सवार होकर विधर्मी लुटेरों पर टूट पड़े और युद्ध करते हुए कच्छ (गुजरात) में अंजार तक चले गए व यवनों का संहार कर उनका धड़ अन्जार में शान्त हुआ। यह स्थान अंजार, अजयसर से लगभग ८०० किलोमीटर दूरी पर है। अजयसर में जहाँ महाराज अजयपालजी ने अपना शीश अजगंधेश्ववर महादेव जी को समर्पित किया वहाँ उनका मंदिर बना है व पूजा होती है और मेला लगता है। साथ ही साथ जहाँ अंजार में धड़ गिरा वहाँ भी उनका मंदिर बना है व पूजा स्थान है और मेला लगता है। ८०० किलोमीटर दूरी तक बिना मस्तक के लड़ने की यह घटना संसार भर में अचंभित कर देने वाली लेकिन पूर्णतया सत्य घटना है। क्षत्रिय राजवंशों में पहले ज्ञात झुंझार महाराजा अजयपालदेव चहुआण ही है। इतनी दूरी बिना सिर युद्ध करते हुऐ जाना किसी क्षत्रिय के ही वश की बात है अन्यत्र तो ऐसी कल्पना भी विद्यमान नहीं है। महाराजा अजयपाल चौहान इस धरती पर विश्व इतिहास के पहले योद्धा थे जो झुंझार (झुंझार का अर्थ है रण क्षेत्र में अकल्पनीय तरीके से संघर्ष करते अरिदल का विनाश करते हुए वीरगति को प्राप्त होना, युद्ध में हार कर लौटने की अपेक्षा झुंझते हुए मृत्यु का वरण करना। कहीं कहीं कबन्ध रूप में युद्ध करने वाले झुंझार का भी उल्लेख मिलता है। कबन्ध=सिर कटने पर भी धड़ लड़ता रहता है।) हुए थे यानी बिना सिर केवल उनका धड़ आक्रांताओं से लड़ा था और उनको खदेड़ दिया। एक पूरी लुटेरी सेना की टुकड़ी से अकेला वृद्ध क्षत्रिय (राजपूत) जा टकराता है और इतना भीषण संग्राम होता है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। सबसे रोचक घटना यहाँ यह है कि उनका सिर कट जाता है और फिर भी उनका धङ रण जारी रखता है। ऐसा उदाहरण हमें ना सतयुग में, ना त्रेता युग में श्रीराम और रावण के मध्य हुए भीषण युद्ध में और ना ही द्वापर युग के महाभारत जैसे महान् युद्ध में देखने को मिला, जहाँ पर बिना सिर के भी योद्धा का धड़ लड़ा हो।

भाद्रपद शुक्ला की षष्ठी को अजयसर में लगने वाले मेले में जोगी, नाथ जाति के लोग तथा अजयसर के आस-पास के घरों में अपने इष्टदेव अजयपाल बाबा के नाम से रोट या मोटी रोटी चढ़ाने जाते हैं व लोग इनकी पूजा करते हैं। मान्यताओं के अनुसार अजयपाल बाबा प्रातः काल साधु के रूप में, दोपहर को चरवाहे के रूप में और सायंकाल राजा के रूप में रहते हैं। अंजार में अजयपालदेव जी अंजार धणी के रूप में पूजे जाते हैं व यह मान्यता है कि अजयपाल बाबा बीमारियों, सर्पो एवं जानवरों से रक्षा करते हैं। अजयपालदेव जी के नाम स्मरण मात्र से ही सात तरह के ज्वर (बुखार) दूर हो जाते हैं। धर्म, ध्वजा, धरती के रक्षक महाशक्ति अजयपालदेवजी के इस संदर्भ में कहावत भी प्रचलित है- अजयपाल योगी, काया राखे निरोगी। 'ऐतिहासिक स्रोतों' से पता चलता है कि अजयपालजी के समकालीन राजा विपत्तिकाल में अजयपालदेवजी की स्तुति और इनके नाम का जप करते थे। संसार का पहला उदाहरण है कि सन्यासरत रहते हुए भी गोधन व मातृभूमि की रक्षार्थ क्षत्रिय राजा ने क्षात्रधर्म का पालन कर युद्ध किया।

यद्यपि शकुन विद्या अब प्रायः नष्ट हो चुकी है किंतु कुछ लोग इस विद्या के जानकार बचे हैं। उनका कथन है कि पक्षी अजयपालदेवजी की आण (शपथ) आज भी मानते हैं। शकुन शास्त्रियों का कहना है कि कठिन विषयों पर जैसे किसी की मृत्यु अथवा आध्यात्मिक विषय में शकुन लेना हो तो दुष्ट शक्तियाँ पक्षियों से गलत शकुन दिला देती है, लेकिन अजयपालदेवजी की आण (शपथ) दिलाकर दुबारा शकुन लिया जाए तो सही शकुन प्राप्त होता है। यहां पक्षी आज भी आन मानकर सही शकुन देते हैं। इस तपोभूमि पर यहां आने वाले हर श्रृद्धालु की मनोकामना पूर्ण होती हैं।

ओझल हो रही स्मृति, सिमट रहा इतिहास।
बाट निहारे पूर्वज, करके हमसे आस।।

जीवन अनमोल है

– अजीतसिंह कुणघेर

कल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होयेगी बहुरि करेगा कब?

जीवन की हर बात कल पर छोड़ने की मानव जीवन में अनेक लोगों की आदत होती है। लेकिन उन सबको यह ध्यान ही नहीं रहता कि महाकाल न जाने कब उनको उठा लेगा। अर्थात् कब स्वर्गवासी बना देगा यह मालूम ही नहीं है। ऐसे स्वर्गवासी हुए शब्द का प्रयोग दूसरों के लिए ही अच्छा लगता है। अपने और अपनों के लिए तो इस शब्द का प्रयोग स्वप्न में भी अच्छा नहीं लगता, यह दुनिया की वास्तविकता है।

मुझे स्मरण है कि उच्च प्रशिक्षण शिविर आलोक आश्रम में चल रहा था, उसमें माननीय भगवानसिंह जी रोलसाहबसर अपने प्रात:कालीन मंगलाचरण उद्‌बोधन में हम सभी को कह रहे थे –

जब तक रहेगी जिन्दगी फुरसत न होगी काम से।
कुछ समय ऐसा निकालो प्रेम करलो श्री संघ से।।

संघ से प्रेम करने का मतलब है ईश्वर से प्रेम करना। क्योंकि संघ का हर कार्य मुझे झकझोर कर ईश्वर की ओर ले जाने का ही कार्य है। मैं जब अपने आप से ही बात करता हूँ तब मुझे यह बात अवश्य सावधान करती है कि जीवन की अब तक की निकली आयु को मैंने सकाम कार्यों में ही अधिक बिताया है, नाशवंत सुखों के लिए ही बिताया है। शाखा और शिविरों के माध्यम से जीवन में निष्कामता का महत्त्व समझा है। कैसे शाश्वत सुखों के लिए जीवन कैसे जीया जा सकता है यह संघ व्यवहार रूप में सिखाता है। नाशवंत सुखों में ही जिसका जीवन पूर्ण होता है उसको पछताने के अलावा कुछ हाथ नहीं आता। इसलिए जीवन को सद्‌राह पर चलाने के लिये जो करना है वह अभी कर लेना चाहिए नहीं तो अन्त में तो अन्तिम संस्कार ही होगा। संघ कार्य जीवन में निष्काम भाव भरकर निजानन्द दे रहा है और कदम-कदम पर सावधान कर रहा है।

एक प्रसिद्ध राजा की कहानी प्रस्तुत है। राजा ने अपने दरबार में बड़ा उत्सव रखा था। उम्र के हिसाब से जीवन का अन्तिम पड़ाव चल रहा था। उत्सव में अलग-अलग राज्यों के राजा लोग भी निमंत्रित थे। राजा ने अपने गुरुजी को भी निमंत्रण किया था। राजा ने अपने गुरुजी का बड़ा स्वागत किया और उपहार भेंट किए तथा साथ में स्वर्ण मुद्राओं से भरी एक थैली भी भेंट की थी। राजा का युवराज और राजकुमारी भी उत्सव में मौजूद थे।

राज्य की सुप्रसिद्ध नर्तकी अपने नृत्य से सबको खुश करने का प्रयास कर रही थी। राजनर्तकी का पूरी रात नृत्य चलता रहा। ब्रह्म वेला का समय हुआ तब जो तबलेबाज तबला बजा रहा था वह नींद की झपकी लेने लगा। नर्तकी ने तबलेबाज की ओर देखा और उसको झपकी लेते देखकर चिंतित हुई कि अगर राजा ने इसे इस हालत में देख लिया तो अवश्य दण्ड देगा। तबलेबाज को सावधान करने के लिए नर्तकी ने नृत्य के साथ एक दोहा प्रस्तुत किया –

घणी गई थोड़ी रही या भी पल पल जाय।
एक पलक के कारणे यूं ना जनम गंवाय।।

जैसे ही यह बात सुनी, तबले वाला सावधान हो गया और पूरी सावधानी से तबला बजाने लगा। उत्सव में सम्मिलित अन्य लोगों ने भी यह बात सुनी। राजा का युवराज दौड़कर आया और अपना मुकुट नर्तकी को दे दिया। तभी राजा की राजकुमारी आई और अपने गले का नवलखा हार नर्तकी के चरणों में रख दिया। तभी गुरुजी अपने आसन से उठे और जाकर स्वर्ण मुद्राओं की थैली नर्तकी को भेंट कर दी। राजा ने सबके द्वारा नर्तकी को भेंट देते देखकर नर्तकी से कहा- क्या बदतमीजी चला रही है,

यह दोहा बोल कर सबको लूट रही है। जिसके पास जो कुछ है वह सब देते जा रहे हैं, यह क्या चल रहा है। राजा सबको डांट रहा था तब गुरुजी ने कहा-बस राजन नर्तकी को कुछ भी मत कहिए। इसके एक दोहे ने आज मेरी आँख खोल दी है। मैं अब तक पूरी उम्र जंगल में तपस्या करता रहा। वन में रहा, भगवान की भक्ति की, आज आपके कहने से नर्तकी का नृत्य देखने आ गया। नर्तकी को स्वर्ण मुद्राएँ भेंट कर दी क्योंकि माया के आवरण में मुझे नहीं आना चाहिए, मैं जो तुम्हारी भेंट की हुई स्वर्ण मुद्राओं के प्रति मोहित हो गया, पर उसके दोहे ने मुझे समझा दिया-घणी गई, थोड़ी रही, थोड़ा सा जो जीवन बचा है, वह भी तो पल-पल जा रहा है तो एक पलक के कारण क्यों तपस्या को कलंक लगाऊँ। मुझे तो नर्तकी ने समझा दिया, यह तो मेरी भी गुरु निकली कि बाकी बचे समय का तपस्या के लिए ही सदुपयोग करूँ।

तभी राजा का युवराज कहने लगा- आप वृद्ध हो गए हैं फिर भी राजसिंहासन नहीं छोड़ रहे हैं। आज मैं सिपाहियों से मिलकर आपकी हत्या करने वाला था। लेकिन इस नर्तकी के दोहे ने समझाया कि घणी गई थोड़ी रही। अब तो थोड़ा ही समय है। आज नहीं तो कल पिताजी सिंहासन सौंपेंगे ही, तुम राजा बनोगे ही तो फिर पिता की हत्या का कलंक क्यों ले रहे हो? इसलिए मैंने अपना मुकुट उसे भेंट कर दिया, उसने तो मुझे जीवन की बहुत महत्त्वपूर्ण बात सिखाई है।

तभी राजा की बेटी बोली- पिताजी मैं विवाह के योग्य उम्रवाली हो चुकी हूँ। और आप मेरा विवाह नहीं करवा रहे। मैं अपने मनपसंद युवक के साथ भागने वाली थी लेकिन मैंने नर्तकी का दोहा सुना तो मुझे पता चला कि अब तक की उम्र का समय तो निकल गया, अब कुछ समय के लिए अपने पिताजी की इज्जत पर कलंक क्यों लगाऊँ। इसलिए मैंने अपना हार नर्तकी को भेंट कर दिया, उसकी दी गई सीख के लिए।

राजा ने सबकी बात सुनी तो बिना देरी किए राजकुमारी से कहा- आज के महोत्सव में इतने सारे राजकुमार आए हुए हैं, जो तुम्हें पसंद आए उसके गले में वरमाला डालकर अपना विवाह सुनिश्चित कर ले। राजा ने कहा-मैं भी राजपाट छोड़कर जंगल में तपस्या करने जाऊँगा। भगवान की भक्ति करूँगा। राजा का भी मन बदल गया। यह सब देखकर नर्तकी ने सोचा कि मेरे एक दोहे से इतने सारे व्यक्तियों की जिन्दगी बदल गई पर मैं तो अभी नृत्य ही कर रही हूँ। उसने भी निर्णय लिया कि नृत्य का काम छोड़कर अब भगवान की भक्ति ही करूँगी।

क्योंकि घणी गई-थोड़ी रही-या पल-पल जाय, यह कहानी सिर्फ राजा, राजकुमार, राजकुमारी, गुरुजी, नर्तकी की ही नहीं है, यह कहानी आपकी और हमारी भी है। हमारे जीवन में भी समय दौड़ता चला जा रहा है। और कितना बचा है यह हमें मालूम नहीं है। अत: बचे हुए थोड़े से समय में तो कुछ ऐसा करें कि कोई कलंक न लगे और हमारा उद्धार हो जाए। मुझे तो बार-बार संघ संरक्षक श्री के शब्द अपने कानों में गूंजते लग रहे हैं- जागो जागो, जागो-शायद हम में से बहुत से लोग मायावी नींद में सो रहे हैं। इसीलिए तो पूज्यश्री के सहगान के शब्द भी दुनियावी नाशवंत सुखों की नींद से जगा रहे हैं और कह रहे हैं- जीवन का एक पल और एक क्षण कितना मूल्यवान है।

एक पिता डॉक्टर से प्रार्थना कर रहा था कि एक क्षण के एक लाख रुपए आपको दे सकता हूँ। सौ साल के जितने क्षण हों उसके हिसाब से मैं आपको रुपये दे सकता हूँ, मेरे इकलौते बेटे को बचा लीजिए। तब डॉक्टर साहब ने जो उत्तर दिया वह हम सभी को झकझोर देता है। डॉक्टर साहब ने कहा- क्षमा कीजिए, यह सत्ता ईश्वराधीन है, मैं इसमें एक क्षण भी बढा नहीं सकता।

पाठकगण सोचिए हमारे जीवन का एक-एक क्षण कितना मूल्यवान है, उसका हम कैसा उपयोग कर रहे हैं।

●

धर्म के चार स्तम्भ और क्षत्रिय युवक संघ का आदर्श शिक्षण

– जितेन्द्रसिंह देवली

धर्म के चार स्तम्भ–सत्य, तप, दया और दान– के महत्त्व को चारों युग के दृष्टान्तों से समझा जा सकता है। ये स्तम्भ न केवल समाज की नींव हैं, बल्कि उनके पतन से समाज और युग का ह्रास भी होता है। वर्तमान में श्री क्षत्रिय युवक संघ इन मूलभूत स्तम्भों को पुनर्स्थापित करने के लिए युवाओं को शिक्षित और प्रेरित कर रहा है। संघ के आदर्श स्वयंसेवक इन मूल्यों को अपने आचरण और कार्यों के माध्यम से जीते हैं, जिससे समाज में सांस्कृतिक जागृति और पुनरुत्थान सम्भव हो सके।

सत्य और सतयुग: धर्म का प्रथम आधार :–सतयुग सत्य और धर्म की प्रधानता का युग था। यह वह समय था जब मानव समाज सत्यनिष्ठा और नैतिकता के उच्चतम स्तर पर था। राजा हरिश्चंद्र, जो सतयुग के महान उदाहरण हैं, ने अपने राज्य, परिवार और यहाँ तक कि अपना जीवन सत्य के लिए समर्पित कर दिया। उनकी परीक्षा कठोर थी, लेकिन उन्होंने सत्य को त्यागा नहीं।

क्षत्रिय युवक संघ से संबंधित :– श्री क्षत्रिय युवक संघ सत्य को जीवन का मूलभूत आदर्श मानता है। संघ के स्वयंसेवकों को सिखाया जाता है कि सत्य का पालन हर परिस्थिति में करें, चाहे वह व्यक्तिगत जीवन हो या सामाजिक कार्य।

उदाहरण : संघ के कार्यों में सत्यनिष्ठा के साथ नेतृत्व करना और अपनी बात पर अडिग रहना सबसे महत्त्वपूर्ण है। आदर्श स्वयंसेवक अपनी दिनचर्या और संघ के कार्यक्रमों में यह सिद्धान्त अपनाते हैं।

तप और त्रेतायुग : आत्मशक्ति का निर्माण :– त्रेतायुग में धर्म के दूसरे स्तम्भ, तप का उत्कर्ष था। महर्षि विश्वामित्र और अगस्त्य जैसे ऋषि अपनी तपस्या के बल पर समाज को ज्ञान, शक्ति और प्रेरणा प्रदान करते थे। भगवान राम, जो मर्यादा पुरुषोत्तम कहे जाते हैं, ने वनवास के समय में भी न केवल व्यक्तिगत तप किया, बल्कि अपने जीवन को समाज और धर्म की सेवा के लिए समर्पित किया।

क्षत्रिय युवक संघ से संबंधित :– संघ में युवाओं को तप का महत्त्व समझाया जाता है। तपस्या का अर्थ केवल कठिन साधना नहीं है, बल्कि आत्मसंयम, धैर्य और अनुशासन का पालन भी है।

उदाहरण: संघ के शिविरों में कठिन शारीरिक और मानसिक अभ्यास, योग और आत्मशुद्धि के कार्यक्रम युवाओं को तप की शिक्षा देते हैं। यह उन्हें सिखाता है कि कैसे विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य और शक्ति के साथ धर्म के मार्ग पर अडिग रहें।

दया और द्वापरयुग: करुणा का पतन :– द्वापरयुग वह समय था जब समाज में करुणा का ह्रास होने लगा। बड़ी संख्या के यदुवंशी वंशजों ने आपसी संघर्ष और वैमनस्य के कारण अपने वंश का नाश कर लिया। यहाँ तक कि भगवान श्रीकृष्ण को भी इस युग में अधर्म और हिंसा के कारण महाभारत का युद्ध करना पड़ा।

क्षत्रिय युवक संघ से संबंधित :– संघ युवाओं को यह सिखाता है कि करुणा का अर्थ केवल सहानुभूति नहीं, बल्कि समाज के हर वर्ग के लिए संवेदनशीलता और न्याय का भाव रखना है।

उदहारण: श्री क्षत्रिय युवक संघ द्वारा आयोजित रक्तदान शिविर, युवाओं को जागृत कर संगठित कर समाज की प्रेम रूपी प्रेरक शक्ति से जोड़ना और सामाजिक सेवा कार्यक्रम करुणा के आदर्श का प्रतीक है। आदर्श स्वयंसेवक समाज के जरूरतमंद वर्ग की मदद करके करुणा का यह स्तम्भ जीवित रखते हैं।

दान और कलियुग: अन्तिम आधार :– संघ दान के महत्त्व को युवाओं के जीवन में पुन:स्थापित करने के लिए प्रतिबद्ध है।

(शेष पृष्ठ 33 पर)

हमारी विवाह संस्था–वर्तमान चुनौतियाँ, परिणाम एवं निवारक उपाय

– राजेन्द्रसिंह रानीगाँव

हमारी सनातन परम्परा में विवाह एक पवित्र आत्मानुबंधन माना जाता है। मानव जीवन के सोलह संस्कारों (गर्भाधान, पुसंवन, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, नामरण, निस्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भं, केशान्त, समावर्तन, विवाह एवं अंत्येष्टि) में विवाह सामाजिक जीवन की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्कार है।

हम यह मानते हैं कि यह ईश्वरीय विधान के अनुसार पूर्व निर्धारित होता है। यहाँ तक कि पश्चिमी सभ्यताओं में भी यह मान्यता रही है कि– "Marriages are made in Heaven and Performed on earth." अर्थात् विवाह के युग का निर्धारण स्वर्ग में ही हो जाता है। पृथ्वी पर तो इस संस्कार का औपचारिक निस्पादन होता है।

हमारी धार्मिक मान्यताओं एवं सुसंस्कारों के कारण विवाह नामक संस्था सहस्त्रों वर्षों से पुष्पित, पल्लवित होती रही है। हम इस बंधन को सात जन्मों के पवित्र आत्मानुबंध के रूप में स्वीकार करते रहे हैं। हमारे धर्मग्रन्थों एवं सामाजिक संस्कारों में विवाह विच्छेद का प्रावधान ही नहीं है अत: इस शब्द का ही उल्लेख ग्रन्थों में नहीं है।

धार्मिक दृष्टि से विवाह संस्था की इस पृष्ठभूमि के आलोक में वर्तमान स्थिति में इस संस्था के बाबत चिंताजनक परिदृश्य दिखाई दे रहा है। देश की अंग्रजी दासता से मुक्ति के पश्चात् स्थापित लोकतांत्रित शासन व्यवस्था में लिखित संविधान सर्वोपरि माना गया है। संविधान में समस्त प्रजाजनों के लिए विवाह विधि एवं विच्छेद के प्रावधान वाले कानून बने। तात्कालिक समय में महिलाओं की अत्यन्त विकट सामाजिक एवं शैक्षणिक स्थिति के मद्देनजर यह आवश्यक माना गया था।

विवाह विच्छेद के संवैधानिक प्रावधानों के लागू होने के पश्चात् भी प्रथम 25 वर्षों में सनातन धर्मावलम्बियों में ऐसे मामले बहुत कम होते थे। हम यदि क्षत्रिय समाज की बात करें तो इस काल में अत्यधिक विशेष मामलों में ही इस प्रावधान का प्रयोग होना पाया गया है।

अब यदि हम गत 25 वर्ष की अवधि में इस प्रकार के मामलों की चर्चा करें तो यह अत्यधिक चिंताजनक स्तर तक बढ़ चुके हैं।

राज्य के 2 प्रमुख शहरों (जयपुर, जोधपुर) के क्षत्रिय बहुल आवासीय क्षेत्रों को ''प्रतिनिधि सेम्पल'' मानकर ऐसे विचाराधीन मामलों को देखते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि ''विवाह–विच्छेद'' नामक रोग अब ''महामारी'' के रूप में फैल चुका है। समाज के सामूहिक चिंतन के लिए स्थिति अत्यन्त विकट हो चुकी है। क्षोभ का विषय यह है कि हम अब भी इसकी विकरालता को सामाजिक रूप से स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं। हमारे सामाजिक एवं राजनैतिक आयोजनों में इस विषय पर ''सामूहिक'' चर्चा कदाचित ही होती है।

यह स्थिति और गम्भीर चिंतनीय इस कारण भी है कि आज हमारे विवाह समारोह अत्यन्त ''व्ययकारी'' हो रहे हैं। दोनों पक्षों की तरफ से वैवाहिक आयोजनों में क्षमता से अधिक राशि का ''व्यय'' किया जाता है। ऐसे में जब विवाह के प्रथम वर्ष में ही विवाहित युगल विभिन्न कारणों से अलग–अलग रहने लग जाता है तो ऐसे आयोजनों की सार्थकता पर ही प्रश्नचि÷ लगता है।

इन सबका दुष्परिणाम यह हो रहा है कि एक तरफ विवाह विच्छेद के मामले (प्रकरण) निरन्तर बढ रहे हैं। दूसरी तरफ आर्थिक संसाधन सीमित होने के उपरान्त भी

विवाह समारोह की भव्यता के नाम पर वधु के पिता की पैतृक कृषि भूमि अथवा शहरी क्षेत्रों में 30-35 वर्ष पूर्व क्रीत आवासीय भूमि का विक्रय हो जाता है।

बच्चा/बच्ची अपने-अपने माता-पिता के पास वापस आ जाते हैं परन्तु समाज को अपूरणीय क्षति पारिवारिक बिखराव के रूप में होती है। साथ ही वर/वधू पक्ष द्वारा जो भूमि बेची गई थी (इसी विवाह के लिए) वह सदा-सदा के लिये हाथ से निकल जाती है।

एक और दुष्परिणाम जो अत्यन्त घातक है वह यह है कि दोनों पक्षों में परिवारों की आन्तरिक कठिनाईयाँ बढ़ जाती हैं। कुंठित परिवार अपने-अपने पुत्र/पुत्री का पुनर्विवाह करने के लिए विवश होते हैं। ऐसे में उनकी समान स्तर का परिवार रिश्ते के लिए तैयार नहीं होता है। फलस्वरूप किसी भी प्रकार अपने बच्चे/बच्ची का ''घर'' बसाने हेतु 'अनुलोम' एवं 'प्रतिलोम' विवाहों को स्वीकार करना उनकी विवशता बन जाती है। आज हमारे चारों तरफ ऐसा घटित हो रहा है जिससे पूर्वजों के रक्त से सिंचित समृद्ध परम्परा वाला समाज अपनी नींव को हिलता हुआ अनुभव कर रहा है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि हमारी विवाह संस्था के समक्ष गम्भीर चुनौतियाँ विद्यमान हैं तथा उनके दुष्परिणाम भी हमारे सामने हैं।

अब 'यक्ष' प्रश्न यह है कि किन कारणों से यह स्थिति उत्पन्न हुई है। जब इनका सम्यक ज्ञान होगा तो निराकरण के उपाय भी सोचे जा सकते हैं। लेखक की सीमित दृष्टि एवं सोच के अनुसार निम्न प्रमुख कारण है-

1. क्षत्रिय संस्कारों का विलोपन :- हमारे बालक/बालिकाओं को प्रारम्भ से क्षत्रियोचित संस्कार प्रदान करने वाली ''संयुक्त परिवार'' नामक ईकाई अब लगभग समाप्त हो चुकी है। माता-पिता अर्थोपार्जन आदि में व्यस्त रहते हैं उनके पास समयाभाव है। आर्थिक एवं व्यावहारिक कारणों से वे लोग गाँव छोड़कर शहरों में पलायन कर रहे हैं। इस कारण गाँव के वृहत्तर सामाजिक परिवार से स्वत: प्राप्त होने वाले संस्कार एवं अनुशासन से भी बच्चे वंचित हो रहे हैं। ये परिस्थिति बच्चों को शहरों के दूषित वातावरण (सामाजिक) में हीन संस्कारों को ग्रहण करने के लिए उत्प्रेरक का कार्य करती हैं। प्रिंट, इलैक्ट्रोनिक एवं सामाजिक मीडिया द्वारा निरन्तर उपलब्ध करवाई जा रही नैतिकता विहीन सामग्री को गृहण कर हमारे बच्चे बड़े हो रहे हैं। यह पीढ़ी स्वच्छन्दता को अपना मूल अधिकार मानती है। विद्यमान सामाजिक एवं विधिक वातावरण भी व्यक्तित्व के एकाकी विकास का पोषक है। हमारी वर्तमान पीढ़ी में अधिकांश लोग 'व्यक्ति' प्रधान जीवनशैली को सर्वोच्च मानते हैं, वे पारिवारिक एवं सामाजिक अनुशासन को खुले रूप में अस्वीकार करते हैं। फलस्वरूप उनमें पारिवारिक एवं सामाजिक 'कर्तव्य' पालन की भावना ही समाप्त हो चुकी है। व्यवहार में लचीलापन एवं समन्वय के गुणों का अभाव इस पीढ़ी के दाम्पत्य जीवन को अस्थाई बनाने के बहुत बड़े कारण हैं।

2. विलम्ब से विवाह :- विवाह संस्था की कमजोरी का यह भी एक बड़ा कारण है। क्योंकि आज 27-28 वर्ष की न्यूनतम आयु में विवाह हो रहे हैं ऐसे में वर/वधु का व्यक्तित्व एक ढांचे में ढल चुका होता है। उनमें एक दूसरे के विचारों के अनुकूल आचरणों में परिवर्तनों की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं। शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति के वैकल्पिक साधन उपलब्ध होने के कारण विवाहपूर्व/विवाहेतर सम्बन्धों के होने की संभावनाएँ भी देरी से विवाह के मामलें में बढ़ी रहती हैं।

3. समाज की गौण भूमिका एवं संवैधानिक प्रावधानों का दुरुपयोग :- समाज की मूल इकाई परिवार है। परिवार का मूलाधार विवाह है अत: इस अविभक्त इकाई (परिवार) के निर्माण में समाज की सक्रिय भूमिका आवश्यक है। धरातल पर स्थिति बिल्कुल विपरीत होती जा रही है। सर्वप्रथम हम संवैधानिक विधि के प्रश्न पर कुछ चर्चा करते हैं। विधि के निर्माण का मूल उद्देश्य

राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता को बनाये रखना है। मूल उद्देश्य की पूर्ति हेतु संविधान में सामाजिक, पारिवारिक, व्यापारिक एवं राजनैतिक व्यवहारों हेतु लोगों के आचरण को विनियमित किया है। इस प्रक्रिया में समाज की प्रचलित मान्यताओं एवं मूल्यों का समावेश भी किया गया है। ''समाज'' राष्ट्र की आत्मा है अत: राष्ट्र चिंतन के प्रत्येक क्षेत्र में समाज का स्थान होना ही चाहिय। आज गम्भीर चिन्तन का विषय यह है कि संविधान के अनुसार निर्मित 'विधि' में प्रावधानों का विवेचन न्यायालयों द्वारा ''व्यक्ति'' केन्द्रित ढ़ंग से किया जाता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता को समाज के ऊपर सर्वोच्च प्राथमिकता दी जा रही है। वैवाहिक विधि में भी पति-पत्नी के निर्णयानुसार न्यायालय न्यायिक निर्णय देते हैं। इसमें समाज की भूमिका लगभग 'शून्य' है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में न्यायालयों के विधिक निर्णय ही अन्तिम रूप से मान्य हैं अत: विवाह आदि के क्षेत्र में समाज की स्वीकृति-अस्वीकृति प्रभाव शून्य है फलस्वरूप विधिक रूप से एवं व्यावहारिक रूप से समाज नामक संस्था अस्तित्व विहीन हो गई है। विवाहित युग्मों पर सामाजिक अनुशासन के समापन का यह बहुत बड़ा कारण है।

उपरोक्त चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना करने हेतु कुछ व्यावहारिक सुझाव निम्नानुसार हैं -

1. उचित आयु में विवाह :- बड़ी आयु में विवाह से व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना ऐसे युगलों को करना पड़ता है। अत: तात्कालिक रूप से ऐसे परिवार जहाँ वर/वधु अर्थाजन कर रहे हैं अथवा व्यावहारिक पृष्ठभूमि वाले हैं वहाँ अधिकतम 25 वर्ष तक की आयु में विवाह कर दिया जावे। विवाह में क्षमतानुसार उपहार पुत्री को देने वाले परिवारों से यह अनुरोध है कि स्वर्णाभूषणों के स्थान पर शुद्ध स्वर्ण/स्वर्ण बॉण्ड, अचल सम्पत्ति आदि दी जावे जिससे इनमें मूल्य संवर्धन होता रहे तथा आवश्यकता की दशा में उपयोग हो सके। दैनन्दिन उपयोग के लिए ''इमिटेशन'' वाले आभूषण अच्छा विकल्प है। इससे सुरक्षा का भय भी समाप्त हो जाता है। विवाह में ''अपव्यय'' को भी इससे सीमित किया जा सकता है।

समय पर विवाह से सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि बालक/बालिकाओं में भटकाव तथा अनुलोप/प्रतिलोप विवाह की सम्भावनाओं को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

2. समाज नामक संस्था का पुनरुर्थान :- जहाँ विवाह विच्छेद की परिस्थितियाँ प्रबल हो गई हो वहाँ समाज के सामाजिक एवं राजनैतिक नेतृत्व की सेवाएँ प्रभावी ढंग से ली जावे। सम्बन्धित पक्षों के वृहद् परिवार (Extended Family) के सदस्य अथवा उनके निवास/कार्यस्थल के सामाजिक कार्यकर्त्ता ऐसे पुनीत कार्य हेतु आगे आवें। वे नेतृत्व के माध्यम से दोनों पक्षों को सहमति से रिश्ते के निर्वहन हेतु प्रेरित करें। समाज के लोगों के जुड़ाव से यह सत्य भी स्पष्ट हो जाएगा कि वर/वधु पक्ष में से कौन वास्तविक रूप से पीड़ित है। यदि दूसरा पक्ष समाज के लोगों के सम्मिलित प्रयासों को भी अस्वीकृत करता है तो यह दायित्व समाज अपने कंधे पर लेवे कि वे ''पीड़ित'' परिवार के पुत्री/पुत्र को पुन: सामाजिक-पारिवारिक जीवन में स्थापित करने हेतु पुनर्विवाह में पूर्ण सहयोग करे। त्रुटीकर्ता परिवार (पीड़क) को सामाजिक रूप से कोई अतिरिक्त सहायता न दी जावे। विधि मान्य ढंग से ऐसे परिवारों को सम्मान से वंचित रखा जावे।

3. क्षत्रिय युवक संघ/अन्य सामाजिक संस्थाओं द्वारा संचालित संस्कार निर्माण शिविरों/कार्यशालाओं की आवृति में वृद्धि :- समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं सहित विवाह विच्छेद की व्याधि का बड़ा कारण वर-वधु के संस्कारों में ''क्षरण'' है। सामाजिक स्तर पर इस क्षरण को रोकने एवं क्षत्रियोचित संस्कारों के आरोपण हेतु क्षत्रिय युवक संघ द्वारा समय-समय पर बालक-बालिकाओं तथा दम्पत्तियों के लिए शिविरों का आयोजन एक अति महत्त्वपूर्ण सामाजिक एवं वैयक्तिक सुधार वाला कार्य है। ''संघ'' इसके लिये

''साधुवाद'' का पात्र है। अन्य संस्थाएँ भी जो ऐसे कार्यक्रम आयोजित करते हैं वे समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी कार्य कर रहे हैं।

हम सभी क्षत्रिय बन्धुओं का यह दायित्व है कि ऐसे शिविरों में निर्धारित आयु वर्ग के सभी पात्र बालक-बालिकाएँ अवश्य भाग लेवें। यह कार्य दीर्घकालीन लाभ देने वाला है। समाज में विचार क्रान्ति की दृष्टि से ''श्री क्षत्रिय युवक संघ'' गत 79 वर्षों से साधना मार्ग पर अग्रसर है परन्तु वांछित परिणामों के लिए हमें और प्रयासों की आवश्यकता है। ''संस्कार निर्माण'' एक सतत् परियोजना है तथा लेखक का ऐसा दृढ़ विश्वास है कि ''संघ'' सहित अन्य समस्त क्षत्रिय संगठनों को भविष्य की दृष्टि से इस कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। बालक-बालिकाओं में अच्छे संस्कार होने से समाज का दीर्घकालीन लाभ होगा तथा इस आयु वर्ग में समाज के संसाधनों के निवेश का परिणाम आवश्यक रूप से सकारात्मक ही होगा। तात्कालिक रूप से हम यह कर सकते हैं कि विवाह के योग्य वर-वधु की अन्य योग्यताओं (यथा शैक्षणिक, शारीरिक आदि) के साथ-साथ प्रत्येक आकांक्षी परिवार यह भी देखे कि प्रस्तावित सम्बन्ध के पात्र वर-वधु ने ऐसे संस्कार निर्माण शिविरों में भाग लिया है। हम जब वृहद स्तर पर ऐसा करने लगेंगे तो शिविरों में स्वत: संख्या बढ़ेगी। ''संघ'' द्वारा ऐसे बालक-बालिकाओं को प्रमाण-पत्र आदि देने के प्रस्ताव पर विचार किया जा सकता है। ये लेखक के व्यक्तिगत विचार हैं। समाज का चेतन एवं प्रबुद्ध वर्ग इस विषय पर मंथन कर समाज हित में निर्णय ले सकता है। विवाह की पवित्र संस्था को संजीवनी सामूहिक प्रयासों से ही सम्भव है।

पृष्ठ 29 का शेष..........धर्म के चार स्तम्भ और क्ष.यु. संघ का आदर्श शिक्षण

उदाहरण: संघ के आदर्श स्वयंसेवक अपने समय और ऊर्जा को समाज की सेवा में लगाते हैं। चाहे वह समाज के गरीब बच्चों को शाखा, शिविर के माध्यम से शिक्षा देना हो, आपदा के समय रक्तदान, नेतृत्व अथवा सहयोग कर समाज के आंदोलन को सही दिशा देने, समाज हित के लिये सरकार से वैधानिक लड़ाई लड़ने का कार्य करना हो, या सांस्कृतिक आयोजनों के लिए अपने संसाधन समर्पित करना हो, दान का यह आदर्श संघ के हर कार्य में झलकता है।

संघ का शिक्षण और आदर्श स्वयंसेवक :- श्री क्षत्रिय युवक संघ का शिक्षण धर्म के इन चार स्तम्भों के पुनर्स्थापना पर आधारित है। संघ युवाओं को सिखाता है कि वे न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में इन मूल्यों को अपनाएँ, बल्कि समाज में भी इन्हें स्थापित करें।

सत्य का पालन :- स्वयंसेवकों को सिखाया जाता है कि वे सत्य के मार्ग पर चलें और समाज में सत्यनिष्ठा का प्रचार करें।

तप का अभ्यास :- कठोर अभ्यास और अनुशासन से अपने शरीर और मन को मजबूत बनाएँ।

दया का भाव :- कमजोर और जरूरतमंदों की मदद करें।

दान का महत्त्व :- समाज और धर्म के लिए अपने सांसाधन और समय समर्पित करें।

स्मरणीय- धर्म के चार स्तम्भों की पुन: स्थापना आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। श्री क्षत्रिय युवक संघ इस दिशा में कार्यरत है, जो युवाओं को इन मूल्यों के प्रति जागरूक करता है और उन्हें एक आदर्श स्वयंसेवक बनने के लिए प्रेरित करता है।

संघ के शिक्षण से प्रेरित होकर, यदि हर युवा सत्य, तप, दया और दान के मार्ग पर चले, तो न केवल समाज का, बल्कि पूरे राष्ट्र का उत्थान सम्भव है। यही धर्म का असली अर्थ है, और यही संघ का परम उद्देश्य...।

●

अपनी बात

साधना में हमारा मन मरे यही सिखाना होता है। हमारा अहंकार मरे यही सिखाता होता है। और अंतत: हम मिट जाएँ यही हो जाता है। जैसे बीज मिट जाता है तो अंकुर होता है, ऐसे ही हम मिटेंगे तो आत्मा होगी। हमारा जो हमारा पन है वह जब तक नहीं मिटता तब तक आत्मा नहीं हो सकती। जैसे बूंद सागर में गिर जाती है और खो जाती है, ऐसे हम जब खो जाएंगे, गिर जाएंगे शाश्वत के सागर में, जरा भी न बचेंगे, हमारी कोई रेखा भी नहीं बचेगी, तभी हम जानेंगे सत्य क्या है।

पतंगा जब दूर होता है तो ज्योति उष्ण है ऐसा मालूम नहीं पड़ता। कैसे मालूम पड़े? ज्योति जला देगी ऐसा नहीं मालूम पड़ता। पतंगे का प्रेम है ज्योति से अत: ज्योति से आह्लादित होकर नाचता हुआ चला आता है। जैसे-जैसे करीब आता है, वैसे-वैसे उष्णता बढती है। परन्तु तब ज्योति का आकर्षण भी प्रबल होने लग जाता है। ज्योति के और करीब आता है कि पंख भी जलने लगते हैं। लेकिन अब लौटने का उपाय नहीं रह जाता। अब ज्योति का अदम्य आकर्षण खींचता है और पतंगा गिर जाता है ज्योति में और एक हो जाता है ज्योति के साथ। ऐसे ही शिष्य का गुरु में गिरकर एक हो जाना होता है। साधक को साधना ऐसे ही साध्य से एक कर देती है।

साधना के कष्टों से भय तो लगेगा। भय बिल्कुल स्वाभाविक है। कोई चाहे या न चाहे कि मेरा साध्य तो इतना प्यारा है फिर उसमें भय लगे यह मैं नहीं चाहता। साधना से लग गए तो अब चाहना या न चाहना मायने नहीं रखता कष्ट तो आएंगे। जब तक साधक स्वयं साध्य में मिट जाएगा तब तो यह भय और कष्ट मिट ही जाएँगे। साधक मन और अहंकार को मिटाकर साध्य में स्वयं मिट जाएगा तब ही यह भय और कष्ट मिटेंगे। पीछे लौटने का उपाय ही नहीं है, अब तो आगे जाना ही होगा, साधना में बढते-बढते ज्योतिर्मय साध्य में ही रमना होगा।

साधना के मार्ग पर पीछे जाने का उपाय नहीं है। बहुत बार मन करता है लौट चलो। बहुत बार मन करेगा, पहले ही ठीक था। बहुत बार मन करेगा-यह किस उलझन में फंस गए? यह किस झंझट में पड़े? यह कैसी आकर्षण की दिवानगी आती चली जाती है?

मेरा मन बड़ा हरामी। यह मन तो कहेगा। यह मन तो छिटकाएगा। यह मन तो कहेगा,-यह तो भय होने लगा, अब यहाँ क्या सार है, हटो! हम तो प्रेम का स्वाद लेने आए थे। प्रेम के स्वाद से ही यह भय आ रहा है क्योंकि अब और बड़े प्रेम के पैदा होने की सम्भावना है। मनुष्य को बहुत-बहुत बार मरना होता है। बहुत-बहुत रूपों में मरना होता है। बहुत-बहुत तलों पर मरना होता है। जिस तल पर आदमी मरता है, उससे ऊपर के तल पर जन्म पाता है। मूलाधार पर मरता है तो अधिष्ठान में पैदा होता है। अधिष्ठान पर मरता है तो मणिपुर में पैदा होता है। मणिपुर में मरता है तो अनाहत में पैदा होता है। ऐसे मरता है और पैदा होता है। ऐसे भीतर की यात्रा होती है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ की साधना में यही क्रम चलता है। मन को, अहंकार को मारते हैं और संपूर्ण समर्पण के लिए हर बाधा को पार कर आगे बढते हैं।

आज के समाज में व्यक्तिगत अहंकार का समुद्र लहराता है, उसके क्षारांश को मिटाने के लिए अपरिमित अमृत का प्रयोग करना पड़ेगा।

- पू. तनसिंह जी

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर
SS KIRTEE
AN ISO 9001 : 2015 CERTIFIED COMPANY
Piping is Our Business Satisfaction is Our Goal
Mr. Surendra Singh Shekhawat
Director
Shree Ganesh Enterprises
17425
CML-8600120461
IS:12786
CML-8600120457
IS:4984
CML-8600120464
Manufacture Of:-
SS KIRTEE BRAND ISI HDPE Sprinkler Pipe
Mini Sprinkler System | HDPE Pipes & Coils For Water
SHREE GANESH ENTERPRISES
Khasra No. 315/6, 317,318, RIICO Road, Prasrampura, SKS Industrial Area
Reengus, Sikar (Rajasthan)
8209398951 surendrasinghshekhawat234@gmail.com
GANESH
HOTEL
Ganesh Singh Maharoli
Datar Singh Maharoli
Opp. Polovictory Cinema. Station Raod, Jaipur | Contact No. 9929105156

जून सन् 2025
वर्ष : 62, अंक : 06

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या – Jaipur City /411/2023-25

संघशक्ति
ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

श्री संघशक्तिप्रकाशन प्रन्यास (स्वत्वाधिकारी) के लिए मुद्रक एवं प्रकाशक राजेन्द्र सिंह राठौड़ द्वारा भास्कर प्रिंटिंग प्रेस, डी बी कोर्प लिमिटेड, प्लोट नंबर-01, मंगलम कनक वाटिका के पीछे, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, रेल्वे क्रोसिंग के पास, बिलवा, शिवदासपुरा, टोंक रोड़, जयपुर (राजस्थान)-303903 (दूरभाष -6658888) से मुद्रित एवं ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर- 302012 (दूरभाष- 2466353) से प्रकाशित। संपादक राजेंद्र सिंह राठौड़। Email : sanghshakti@gmail-com | Website : www-shrikys-org